विष-कन्या

हमारा रोचक नाट्य-साहित्य

विषपान (पुरस्कृत)	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	२.००
स्वप्न-भंग (पुरस्कृत)	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	२.००
उद्धार (पुरस्कृत)	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	२.००
शपथ (पुरस्कृत)	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	२.५०
छाया	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	१.००
शतरंज के खिलाड़ी	हरिकृष्ण 'प्रेमी'	२.००
समर्पण (पुरस्कृत)	जगन्नाथप्रसाद 'मिलिन्द'	२.००
सुभद्रा-परिणय	वीरेन्द्रकुमार गुप्त	२.५०
शान्ति-दूत	देवदत्त 'अटल'	१.५०
मानव-प्रताप	देवराज 'दिनेश'	२.०
यशस्वी भोज (पुरस्कृत)	देवराज 'दिनेश'	२.०
समुद्रगुप्त	बैकुण्ठनाथ दुग्गल	२.०
वन ध्वनि	आचार्य चतुरसेन शास्त्री	१.५
वितस्ता की लहरें (पुरस्कृत)	लक्ष्मीनारायण मिश्र	२.०
नए हाथ (पुरस्कृत)	विनोद रस्तोगी	१.०
सुजाता	गोविन्दवल्लभ पन्त	१.५
बालहार	कुदसिया जैदी	२.०
उधार का पति (हास्य)	वनमाला भवालकर	१.०
बहू-बेटी	श्रीकृष्ण	०.७५
अभिज्ञान शाकुन्तल	रघुनन्दन	२.००
समाज के स्तम्भ (अनूदित)	सीताचरण दीक्षित	२.५०
भूमि कन्या सीता (पुरस्कृत)	भा० वि० वरेरकर	१.५०
कन्या के लिए (पुरस्कृत)	भा० वि० वरेरकर	१.५०
[illegible] (पुरस्कृत)	भा० वि० वरेरकर	१.५०
चोरी करामात (पुरस्कृत)	भा० वि० वरेरकर	२.००
भगवान मनु तथा अन्य एकांकी (पुरस्कृत)	लक्ष्मीनारायण मिश्र	२.५०
धामगढ़ का राजपथ (पुरस्कृत)	सीताचरण दीक्षित	०.२५
रंगारंग	चिरंजीत	२.०

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली ६

विष-कन्या

रंगमंचीय एकांकी

लेखक

गोविंदवल्लभ पन्त



आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली-

लेखक की कुछ अन्य रचनाएँ

जल-समाधि	४ ०
पर्णी	४ ००
सुजाता	१ ५०
[illegible]	१ ००
मुक्ति के बन्धन	४ ०
वरमाला	१ ७५
राजमुकुट	२ ००
अमिताभ	४ ५०
मदारी	५.००
नूरजहाँ	५.००
प्रगति की राह	४ ५
[illegible] का कंडा	(प्रेस में)

आत्माराम एण्ड संस, दिल्ली ६

प्रकाशक
रामलाल पुरी संचालक
आत्माराम एण्ड संस
काश्मीरी गेट दिल्ली ६

मूल्य : चार रुपये
प्रथम संस्करण अक्तूबर, १९५८
आवरण : मा - मा० [illegible]
मुद्रक नवीन प्रेस दिल्ली-६

दो शब्द

प्रस्तुत पुस्तक में मेरे पिछले पच्चीस वर्षों के लिखे हुए कुछ एकांकियों का ग्रह है। 'परवा-तोड़क यन्त्र' सरस्वती (१९३६) में छपा था। 'जूनी मोटा' १९३८) 'बड़े दिन का शिकार' (१९४२) और 'जहरीला दाँत' (१९४३) भी सरस्वती में प्रकाशित हुए थे।

'बाटरीफाटक' (१९५१) और 'मछमारी' (१९५९) धर्मयुग में 'विष-कन्या' १९३७) तथा 'अपराध मेरा ही' (१९३९) सुधा में 'मार्च रात का नायक' १९४४) विक्रम में '१०४°' (१९५०) संगम में 'भूत-सीमा' (१९५६) मध्य ग्रदेश संदेश में और 'अवैतनिक मेंबर' (१९५९) समाज में छपा था।

अधिकांश एकांकियों में मैंने फिर से संशोधन किया है और रंगमंच की सुगमता का ध्यान रखा है।

'अपराध मेरा ही' शीर्षक एकांकी में छुरा फेंकने की जो विधि है वह प बुझते ही क्षण भर के लिए रंगमंच की रोशनी बुझा सफलतापूर्वक कर ई जा सकती है।

—गोविंदवल्लभ पन्त

क्रम

पात्र

चन्द्रविजय
विजेता राजा

अपराजिता
विजित पक्ष की कन्या

पहला सेनापति दूसरा सेनापति
चन्द्रविजय के सेनापति

एक सैनिक

देश—शत्रु से जीते हुए दुर्ग के शयनागार में
काल—एक रात

विष-कन्या



म. रविदास की रत्न-भिक्षा

[स्थान—पराजित शत्रु से छीन लिए गए दुर्ग के प्रासाद में एक सुसज्जित शयनागार। समय—संध्या। खुले वातायन के पास एक सुन्दर शय्या बिछी हुई है और एक पिंजरे में श्वेत एक कपोत लटक रहा है। महाराज चन्द्रविजय के दो सेनापति प्रवेश करते हैं।]

पहला सेनापति—क्यों मित्र सेनापति! शत्रु के इस दुर्ग को जीत लेने में हमें कई महीने लगे हैं सही पर यह विजय कहीं बहुमूल्य है।

दूसरा सेनापति—लेकिन आश्चर्य इसी बात का है कि विजित महाराज का पता न तो युद्ध के आहत और मृतकों में है न बन्दियों में ही उनकी गिनती हुई है।

पहला सेनापति—हो न हो वे किसी गुप्त सुरंग से सुरक्षा के स्थान को निकल गए।

दूसरा सेनापति—और राजा का अंतःपुर?

पहला सेनापति—वह क्या हमारे स्वागत के लिए यहाँ रख दिया जाता? वे भी सब साथ गए होंगे। मेरी समझ में हमारे महाराज चन्द्रविजय के विश्राम के लिए यह प्रकोष्ठ सबसे अधिक उपयुक्त है।

दूसरा सेनापति—लेकिन दुर्ग की बड़ी सावधानी से चौकसी रखनी पड़ेगी।

पहला सेनापति—ऐसा क्यों कहते हो? हमने दुर्ग का एक-एक कोना छान डाला है, एक-एक ईंट बजाकर सुन ली है। कहीं कोई सन्देह के आधार नहीं मिले हैं।

दूसरा सेनापति—ये वज्रकूट-वासी विश्वकर्मा का निर्माण बताकर अपने स्थापत्य की महिमा बताते हैं। ये घूम जानेवाले स्तम्भ, नीचे धँस जानेवाले धरातल और बीच से विभक्त हो जानेवाले प्राचीर हैं तो बड़े आश्चर्यजनक! तुम जिन भू-भागों को ठोस समझे हुए हो वे गुप्त भवनों की छतें भी हो सकती हैं।

पहला सेनापति—छिपकर रहने के लिए वायु का प्रबन्ध हो सकता है। वन के भी कूप खुद सकते हैं। लेकिन इन सबके ऊपर जिस अनाज के दाने में मनुष्य की काया और कामना टिकी है, वह कहाँ से आएगा ? छः महीने से हमने उनका तमाम बाहरी संसर्ग काटकर रख दिया है। फिर क्यों तुम्हारे ऐसी संभावना आयी है ?

दूसरा सेनापति—नीचे ही नीचे सुरंगों के मार्गों से अवश्य ही अन्नों के साथ उन्होंने अपना सम्बन्ध बना रखा है।

पहला सेनापति—अगर ऐसा होता तो वे इतने शीघ्र आत्मसमर्पण न कर सकते। आहत और मृतकों में महाराज के न मिलने की क्या चिन्ता ? दुर्ग की किसी टूटी दीवार के नीचे उनका समाधिस्थ हो जाना कोई असम्भव नहीं है।

दूसरा सेनापति—(एकाएक कुछ चौंकता है)।

पहला सेनापति—क्यों ? क्यों ? चौंकते क्यों हो क्या हो गया ?

दूसरा सेनापति—मैंने किसी की साँस का शब्द सुना है।

पहला सेनापति—क्या विश्वकर्मा के बनाए किसी गुप्त और अद्भुत कक्ष में ? लेकिन यह तो बताओ वह साँस है कैसी ठंडी या गरम ?

दूसरा सेनापति—मतलब तुम्हारा ?

पहला सेनापति—सेनापति जी विरह की साँस ठंडी और मिलन की गरम होती है। जो ठंडी होती है वही लम्बी भी। अब तो बताओ कैसी है वह ?

दूसरा सेनापति—(ध्यान से सुनता है) ज़रा सुनने दो। (फिर सुनता है) है अवश्य है और यह ठंडी साँस है।

पहला सेनापति—एक बात और बताओ नर की है या नारी की ?

दूसरा सेनापति—हूँ ! शब्द का भेद पाया जा सकता है साँस का कैसे ?

पहला सेनापति—अभी महोदय साँस ही पर तो शब्द उद्धृत हुआ है।

सैनिक—(नेपथ्य में) महाराज नगरविजय की जय !

दूसरा सेनापति—महाराज तो स्वयम् ही इधर आ गए।

नगरविजय—(आकर) मैं तुम दोनों सेनापतियों की खोज में हूँ।

पहला सेनापति—और महाराज हम आपके विश्राम के लिये उपयुक्त

स्थान ढँक रहे हैं।

दूसरा सेनापति—यह बात सर्वथा आपके योग्य है परन्तु—

चन्द्रविजय—और तुमने तो इसे बिल्कुल परिपूर्ण भी कर दिया है। खाने पीने की वस्तुएँ ही नहीं मनोरंजन के लिये वाद्य-यन्त्र भी लाकर रख दिए।

दूसरा सेनापति—हमने इसमें कुछ नहीं किया महाराज इसी लिए तो मैं कहता हूँ—

पहला सेनापति—तुम क्या कहते हो ? यह कब ही कहता है कि शत्रु-पक्ष को इसका कुछ भी आभास नहीं था कि उनके दुर्ग का इतने शीघ्र पतन हो जायगा।

चन्द्रविजय—भगवान का यह विचित्र विधान है। दास-दासियों ने यह शय्या न जाने किसके लिए बिछाई और इसमें विश्राम करने को आ गया कौन ? (खड्ग एक कोने में रखता है और कमर के कटिबंध पर हाथ रखता है)।

दूसरा सेनापति—(चन्द्रविजय का कटिबन्ध और कवच खोलने में सहायता देता है) पर महाराज—

चन्द्रविजय—तुम्हारे भीतर विश्वास की मात्रा बहुत कम है सेनापति ऐसा भी क्या ? दिन भर के युद्ध से मैं बहुत थक गया हूँ। तुरन्त ही मेरे लिए विश्राम आवश्यक है। सच पूछो तो यह शयनागार इस समय सबसे बड़ा वरदान है।

दूसरा सेनापति—महाराज मेरे कहने का आशय यही है शत्रु के इस दुर्ग को छीन लेने पर अगर हम अपनी विजयों में बिल्कुल निद्रा के वशीभूत हो गए तो हम धोखा भी खा सकते हैं।

पहला सेनापति—तुम शत्रु की बात कहते हो हमें धोखा देने में क्या हमारी इन्द्रियाँ ही कम प्रवीण हैं ? महाराज को विश्राम करने दो सेनापति। उनकी रक्षा के लिए हम और हमारे अधीन इतनी बड़ी सेना क्या पर्याप्त नहीं है ?

[दोनों मिलकर चन्द्रविजय के आभूषण और कवच खोलकर यथास्थान रखते हैं।]

और चकराकर पूछता है) है ! कौन हो तुम यहाँ पर छिपी और सिमटी हुई ? इतनी देर से मैं बड़बड़ा रहा हूँ और तुम प्रतिमा के कानों से सुन रही हो। तुम्हें तुरन्त ही मेरा भ्रम मिटा देना था। कौन हो अब तो उत्तर दो।

अपराजिता—पहले ये द्वार बन्द कीजिए।

वज्रविजय—क्यों ? भय कैसा ?

अपराजिता—आपका परिचय पा चुकी हूँ मैं। मैं भी राजकुल की रमणी हूँ। अपनी लाज भीड़ के बीच में अनावृत नहीं कर सकती।

वज्रविजय—ठीक है, ऐसा ही होना चाहिए। (द्वार बन्द कर साँकल चढ़ा देता है)।

अपराजिता—(सम्पा के पीछे से अपने वस्त्रालंकार सम्हालती हुई बाहर केवल उठ खड़ी होती है और सिर नीचा कर लेती है) अपराजिता मेरा नाम है। पिता के साथ पराजित हो जाने पर मेरे नाम की सारी महिमा जाती रही। ज्योतिषी की गणना पर मुझे क्यों न सन्देह हो ? कैसा नाम रख दिया उन्होंने मेरा ?

वज्रविजय—कोई चिन्ता न करो। तुम अविवाहित जान पड़ती हो ?

अपराजिता—(और भी सिर नीचा कर चुप रहती है)।

वज्रविजय—तुम्हें ज्ञात होगा महाराज कहाँ गए ? उनके अन्तःपुर का और तो कोई भी हमें नहीं दिखाई दिया। तुम ही केवल अकेली यहाँ कैसे रह गईं ?

अपराजिता—इस मेरा दुर्भाग्य ही समझिए महाराज। भोजन के अभाव से पिता जी जब दुर्ग रक्षा की अन्तिम आशा छोड़ देनी पड़ी तो कल आधी रात में उन्होंने परिवार-सहित दुर्ग का परित्याग कर देने का निश्चय किया। हतभागिनी मैं ही अकेली यहाँ छूट गई !

वज्रविजय—कभी-कभी निद्रा हमारी बड़ी बैरिन हो जाती है।

अपराजिता—नहीं महाराज ऐसी तामसी रात में नींद ही किसे आती है ? एक रस्सी के सहारे सब लोग दुर्ग छोड़कर उतर गए। मैं स्वभाव से ही बड़ी अपदग्धा हूँ। बराबर अपनी बारी को टालती रही। सब के सब उतर गए तब

वज्रविजय—(शय्या पर जाता है) हाँ सेनापति जो कुछ है उस पर कोई संशय न करो, जो नहीं है उसका आयोजन होना चाहिए।

पहला सेनापति—अगर एक नायिका होती तो इन वाद्य-यन्त्रों में प्राण प्रस्फुटित हो जाते और आपको बिना प्रयास ही निद्रा आ जाती।

वज्रविजय—हूँ-हूँ-हूँ! सेनापति दिन भर के कर्म की भाँति संगीत से अधिक सम्मोहक है?

दूसरा सेनापति—परन्तु (कोने में से वाद्य उठाकर वज्रविजय के सिरहाने रख देता है)।

पहला सेनापति—दीपक में सब-कुछ है केवल ज्वाला अपेक्षित है। हम अभी उसे भेजते हैं। आप बेखटके सोइए महाराज। आपकी सेवा में पुराने और अपने प्रहरी नियुक्त हैं। ये द्वार बन्द कर दें?

दूसरा सेनापति—नहीं, कोई आवश्यकता नहीं है।

वज्रविजय—हाँ, ऐसी ही बात है। (दोनों सेनापति जाते हैं। वज्रविजय सावधानी से सिर का मुकुट खोलकर शय्या में ही एक ओर रख देता है। वह ज्यों ही सोने लगता है त्यों ही एक ध्वनि पर उसका ध्यान खिंच जाता है। वह एकाएक उठ बैठता है) हैं, नूपुर ही बजते हैं? कौन हो तुम? (फिर कुछ देर ध्यान लगाकर सुनता है) निस्सन्देह! मेरे अतिरिक्त और भी कोई इस प्रकोष्ठ में साँस ले रहे हो? सामने क्यों नहीं आते? किसी भी भावना में तुम्हारा स्वागत है। मित्र हो या शत्रु, कहो। नहीं तो मैं अपने उतारे हुए आयुध फिर उठा लूँगा। (फिर कुछ प्रतीक्षा कर सुनता है। शय्या छोड़कर भूमि पर खड़ा होता है। कक्ष में इधर-उधर देखता है) कक्ष के भीतर तो नहीं जान पड़ते, बाहर नहीं हो क्या? (द्वार पर जाकर दायें-बायें झाँकता है) नहीं, प्रहरी तो बहुत दूर पर खड़े हैं। उनको छोड़ क्या भाग भी जाना तो असम्भव है। (फिर भीतर आता है) तो क्या यह ध्वनि मेरे भीतर का ही भ्रम है? हूँ, ऽ! अन्वेषित ध्वनि इसका एक कारण हो सकती है और कभी-कभी मनुष्य की कामनाएँ अपनी भाषा बोल पड़ती हैं। (एकाएक फिर कुछ सुनकर) नहीं! (बड़े निश्चय के साथ शय्या की चादर उठाकर उसके नीचे देखता है

और घबराकर पूछता है) है ! कौन हो तुम यहाँ पर छिपी और सिमटी हुई ? इतनी देर से मैं बड़बड़ा रहा हूँ और तुम प्रतिमा के कानों से सुन रही हो। तुम्हें तुरन्त ही मेरा भ्रम मिटा देना था। कौन हो अब तो उत्तर दो।

अपराजिता—पहले ये हार रख दीजिए।

चक्रविजय—क्यों ? भय कैसा ?

अपराजिता—आपका परिचय पा चुकी हूँ मैं। मैं भी राजकुल की रमणी हूँ। अपनी बात भीड़ के बीच में प्रमाणित नहीं कर सकती।

चक्रविजय—ठीक है ऐसा ही होना चाहिए। (हार रख कर खोलकर रख देता है)।

अपराजिता—(शय्या के नीचे से अपना वस्त्रालंकार सम्हालती हुई बाहर निकल उठ खड़ी होती है और सिर नीचा कर लेती है) अपराजिता मेरा नाम है। पिता के साथ पराजित हो जाने पर मेरे नाम की सारी महिमा जाती रही। ज्योतिषी की गणना पर मुझे क्यों न सन्देह हो ? कैसा नाम रख दिया उन्होंने मेरा ?

चक्रविजय—कोई चिंता न करो। तुम अविवाहित राजकन्या ही हो ?

अपराजिता—(और भी सिर नीचा कर चुप रहती है)।

चक्रविजय—तुम्हें ज्ञात होगा महाराज कहाँ गए ? उनके अन्तःपुर का और तो कोई भी हमें नहीं दिखाई दिया। तुम ही केवल अकेली यहाँ कैसे रह गईं ?

अपराजिता—इसे मेरा दुर्भाग्य ही समझिए महाराज। आक्रमण के समाचार से पिता को जब दुर्ग रक्षा की अन्तिम आशा छोड़ देनी पड़ी तो कल आधी रात में उन्होंने परिवार-सहित दुर्ग का परित्याग कर देने का निश्चय किया। इस भागा-भागी में ही अकेली यहाँ छूट गई।

चक्रविजय—कभी-कभी निद्रा हमारी बड़ी बैरिन हो जाती है।

अपराजिता—नहीं महाराज ऐसी सामग्री रात में नींद ही किसे आती है ? एक रस्सी के सहारे सब लोग दुर्ग छोड़कर उतर गए। मैं स्वभाव से ही बड़ी भयग्रस्ता हूँ। बराबर अपनी बारी को टालती रही। सब के सब उतर जब सब

भी मेरे साहस कम नहीं हुआ । जबकि अन्त में अचानक यह रस्सी कई व्यक्तियों के बोझ से टूट गई तब जाकर मेरे उत्साह हुआ । फिर क्या होता ?

धर्मविजय—इसके लिये तुम्हें कोई चिंता न होनी चाहिए । घोर दुःख की कालिमा में हमें बड़ा दिव्य प्रकाश प्राप्त हो जाता है । अपने मान और कुल की तुम यहाँ सुरक्षित ही समझो । तुम्हारे पिता के साथ मेरी शत्रुता हो सकती है, तुम्हारे साथ उसके होने का कोई कारण नहीं दिखाई देता ।

अपराजिता—दुर्ग की दीवार से नीचे कूद जाने के लिये माता-पिता पुकारते ही रहे । जो रस्सी के सहारे नहीं उतर सकी उसे कूद जाने की शक्ति कहाँ से मिलती ? ये पापी प्राण बड़े प्रिय हो गए !

धर्मविजय—नहीं अपराजिते ऐसा न कहो । यह अप्रतिम रूप-ज्योति लेकर बिना संसार का अनुभव किए आत्मघात कोई अर्थ नहीं रखता । तुम घोर पातक से बच गई तुमने ठीक ही किया जो दुर्ग की दीवार को मृत्यु की ओर नहीं बनाया । फिर मरण क्या सदैव ही माँगने से मिल जाता है ? अगर किसी हाथ पैर की विस्मृति हो जाती तो कैसे तुम्हारी यह सुकुमारता उस अंगहीनता के भार को जीवन भर ढोती रहती ? पिता के निर्णय में मोह था और तुम्हारे निश्चय में शुभ बुद्धिमानिता दिखाई देती है । यद्यपि तुम्हारी आयु अभी कच्ची ही है ।

अपराजिता—हूँ ऽ हूँ ऽ (फफक-फफक कर रोने लगती है) ।

धर्मविजय—तुम्हारे रोने का कोई भी तो कारण नहीं देखता । कदाचित माता-पिता का वियोग

अपराजिता—मैं आज तक कभी उनसे एक क्षण के लिये भी विलग नहीं हुई थी ।

धर्मविजय—एक ही व्यथा से प्रकृति की वसुधा है । अपराजिते तुम इतने भर की संगीत हो । एक दिन सभी-सम्बन्धियों से क्या तुम्हारा विच्छेद विधाता के हाथों से नहीं लिखा गया है ?—बड़ी कठोरता से पाषाण की गहरी रेखाओं में । इसलिये चुप रहो । अगर तुम किसी अन्यायी और आततायी के हाथों में पड़ गई होतीं तभी दुःख होता । जो भी कहोगी वही तुम्हारे लिये प्रस्तुत

किया जायगा । कौन इस स्वर्गीय रूपोपमा की उपेक्षा कर सकेगा ?

[बाहर से कोई धीरे-धीरे द्वार खटकाता है । अपराजिता फिर शय्या के नीचे विषम को रखती है ।]

जयविजय—यहाँ हमें क्यों किसी का भय हो ? (द्वार की ओर बढ़ता है) ।

[अपराजिता एक कोने में खड़ी हो जाती है फिर कोई द्वार खटखटाता है ।]

जयविजय—कौन हो तुम ?

सैनिक—(बाहर से) महाराज अपराध क्षमा हो । बेला हो चुकी । मैं संध्या के दीपक के लिये प्रकाश लेकर आया हूँ । दोनों सेनापतियों ने आपके लिये मावा बनाया है ।

जयविजय—अरे प्रहरी इस नवीन अधिकृत दुर्ग में बड़े विश्वास के साथ गुस्ताख होकर तो आना बुद्धिमानी नहीं है । मैं खोलता हूँ उसे । (द्वार का थोड़ा-सा भाग खोलकर) लाओ तुम दे दो दीपक । (सैनिक के हाथ से दीपक लेकर फिर द्वार बन्द कर लेता है । दीपक लेकर अपराजिता की ओर बढ़ता है) लो ।

अपराजिता—(उस दीपक को अपने दोनों हाथों में लेती है) ।

जयविजय—धन्य ! आज की यह सुरमई संध्या कितनी मधुर हो उठी ! मेरे और तुम्हारे प्रथम प्यार के बीच में कैसी पवित्र ज्योति से यह दीपक प्रज्वलित हो उठा ? यह दिव्य प्रतीक ! एक ओर अग्नि की साक्षी रखता है और दूसरी ओर सूर्य की तेजस्विता ! क्यों न हम दोनों इसे प्रणाम करें । (दीपक को हाथ जोड़ता है) ।

अपराजिता—(बड़े संकोच के साथ से एक हाथ से अपना मुख ढक दूसरा दीपक-युक्त हाथ सिर के ऊपर उठा लेती है) ।

जयविजय—धीमे ! यह बड़ी मनोहारिणी मुद्रा तुमने प्रकट की है । चाहता तो था इसी मुख को माधुरी-भरी प्रतिमा में तुम निरन्तर बनी रहती—एक सुवर्ण प्रतिमा की भाँति लेकिन पहले ही दर्शन का यह स्वार्थ

ग्रामवासियों ने प्रचार चला रखा होगा।

पहला सेनापति—महाराज सभी लोग कहते हैं, उधर गाँव होने की कोई संभावना हो नहीं है।

दूसरा सेनापति—और भी एक प्रार्थना है महाराज प्रकाश एक ही स्थान पर रहता है। वह प्रकाश कई टुकड़ों में विभक्त हो गया। और वे सब के सब चलने लगे। (चोटी पर भारी की ज्योतिर्मयि देखकर घबराता है)।

चन्द्रविजय—गाँव होगा वहाँ पर और गाँव में होगा कोई उत्सव। जाओ सो रहो तुम एक सुदृढ़ दुर्ग के भीतर सुरक्षित हो। इसके लौह प्राचीर राज में किसी के द्वारा खंडित नहीं हो सकते। चौकसी पर आवश्यक और स्वामिभक्त सेवक ही नहीं बुद्धि का उपयोग करने वाले सैनिकों को नियुक्त करो। जाओ मुझे विश्राम करने दो और तुम्हें भी तो उसी की आवश्यकता है।

पहला सेनापति—महाराज वे प्रकाश बराबर चल ही रहे हैं और हमारे हम जाते हुए दुर्ग की दिशा की ओर ही तो। हमारे मन में अकारण ही संदेह की वृद्धि नहीं हुई। आप चलकर देख लें तो इसी निर्णय पर पहुँच जायेंगे।

चन्द्रविजय—इतनी छोटी-छोटी बातें अपने राजा की दृष्टि में भर दीं तो वह कहाँ से बड़ी बात देख सकेगा? (उसे कुछ याद आती है) हाँ ऽ, हमारी वह अनिश्चित सेना जिसे हम गंगा के उस पार के शिविर में छोड़ आए थे—क्या आश्चर्य है वही मशाल लेकर हमसे मिलने आ रही हो?

पहला सेनापति—महाराज हमारी सेना की दिशा दूसरी थी।

चन्द्रविजय—किसी कारणवश वह दिशा बदल भी सकती है। जाओ सेनापति हार जाने से पहले ही रो देने वाला व्यक्ति पराजय का निमन्त्रण देता है।

दोनों सेनापति—महाराज चन्द्रविजय की जय हो!

चन्द्रविजय—जय के लिए केवल ध्वनि ही नहीं भावना भी दृढ़ होनी चाहिए। इसलिये जाओ परिश्रम से जिस विजय को प्राप्त किया है विश्वास से उस पर जमे रहो। अकारण ही मुझे बाधा पहुँचाने से कोई लाभ नहीं।

[महाराज के प्रस्थान से दोनों सेनापति एक दूसरे को दीर्घ-मति दिखाते हैं।]

दूसरा सेनापति—आप निश्चित होकर विश्राम कीजिए। अब हम आपको कष्ट न देंगे।

पहला सेनापति—पवन में केले के पत्त-सा कोमल हृदय लेकर हम आए थे ...ारके दो ही शब्दों ने उसमें अचल पर्वत की स्थिरता भर दी।

[दोनों सेनापति चले जाते हैं। चन्द्रविजय तुरन्त ही द्वार बन्द कर सांकल ...ृा शय्या के पास आता है।]

चन्द्रविजय—बाहर आओ अपराजिते यदि वह तुम्हारे पिता की सेना भी है तो मुझे कोई भय नहीं है।

अपराजिता—(शय्या के नीचे से बाहर निकलकर) क्यों भय क्यों नहीं है?

चन्द्रविजय—दुर्ग के द्वार पर तुम्हें खड़ा कर क्यों न मुझे सहज ही संधि प्राप्त हो जायगी? तुम्हारे सीमंत में खोजी गई यह सिंदूर की रेखा क्या संधि-पत्र के हस्ताक्षरों में न बदल जायगी? (खड्ग की धार से सिंदूर लगाता है)।

अपराजिता—यह किसकी सेना है?

चन्द्रविजय—किसी की भी हो। जो दोनों पक्षों में उपेक्षित है इस जगत में केवल वही सुख से रहता है अपराजिते! आओ अपने सीमंत के इन दोनों पक्षों को मेरे निकट लाओ। बिना पक्षपात के ठीक बीचो-बीच मैं इस सिंदूर की रेखा को अंकित करूँगा। (उसके सीमंत की ओर खड्ग बढ़ाता है)।

अपराजिता—(अपना सिर चन्द्रविजय की तरफ बढ़ाते हुए) ...नू!

चन्द्रविजय—हाँ अपराजिते धीरे धीरे कि रक्त गहरा न हो और अपने ...वन की रक्त पिपासा पूरी हो जाय। (खड्ग से उसके सीमंत में सिंदूर की ...ा खींचता है)।

अपराजिता—रेखा खिंच गई?

चन्द्रविजय—(अपनी उँगली से रक्त में सिंदूर लगाकर) हाँ रेखा भी खिंच और हमारे बंधन को दृढ़ करने के लिए रक्त का बिन्दु भी अमर हो।

गया। (ज्यों ही अपराजिता के कंधे पर हाथ रखना चाहता है फिर बाहर द्वार पर एक सैनिक खटखटाता है)।

सैनिक—महाराज की जय हो!

वज्रविजय—(रोष के स्वर में) जय हो चुकी दुर्ग पर अधिकार भी हो गया फिर क्या हल्ला मचाते हो? (द्वार के पास जाता है)।

सैनिक—महाराज भोजन तैयार हो गया भण्डारी ने आपकी आज्ञा माँगी है।

वज्रविजय—मैं पहले ही व्यक्त कर चुका हूँ।

सैनिक—तो सेना को भोजन की आज्ञा दी जाय।

वज्रविजय—वह स्वयम ही तभी तुम्हें मिल चुकी जाओ अब सेना के सिवाय प्रभात की आज्ञा माँगने को न आना। (अपराजिता के पास आता है) देखा तुमने! आज ये सबके सब अपनी कार्यकारिता से हमारे प्रेम मिलन के बाधक हो उठे!

अपराजिता—आप कोई उत्तर न दें महाराज। वे लौट जायेंगे जो भी होंगे।

वज्रविजय—तुम भारी रात की जागी हो। तुम्हारा फूल-सा मुख चिन्ता और जागरण की दोहरी व्यथा से कुम्हला गया है। (अपराजिता का हाथ पकड़कर उसे शय्या पर बिठा देता है। एकाएक बाहर फिर किसी की बातें सुनाई देती है) फिर कोई आया है। वे नहीं मानेंगे। किन्तु भाग्य से कैसी तुम्हारे इस प्रकोष्ठ की अवस्थिति है अपराजिते?

अपराजिता—अन्तःपुर के आँगन में ही तो आपकी पाकशाला बना दी गई है। इसी से यह सब गड़बड़ है।

वज्रविजय—अपराजिते! और कहीं कोई दूसरा प्रकोष्ठ नहीं है जहाँ हम रात बिता सकें—इस कोलाहल से दूर?

अपराजिता—क्यों नहीं? दुर्ग के उत्तरी भाग में उधर मेरे पिता के कक्ष हैं।

वज्रविजय—चलो वहीं उन्हें ही बंद कर हम वहाँ देखें तो सही।

अपराजिता—चलिए।

चन्द्रविजय—भोजन के उपरान्त विजय के उल्लास में आसव की अतिरिक्त घूंट पीकर और भी अधिक ऊधम मचायेंगे। तब कैसा राजा और कैसी प्रजा? कैसा स्वामी और कैसा सेवक? चलो।

[अपराजिता अपनी वीर्य-मणि उठाकर पहनती है]

चन्द्रविजय—ठहरो मैं देखता हूँ बाहर कोई है तो नहीं। (द्वार खोलकर देखता है, फिर लौट आता है) चलो पहरे पर भी कोई नहीं है सब भोजन पर टूट पड़े हैं। चलो। (अपना मुकुट पहन लेता है)।

[दोनों चलते हैं। चन्द्रविजय जाते समय द्वार बन्द कर जाता है। कुछ देर में फिर वे दोनों सेनापति बाहर से द्वार खटखटाते हैं।]

पहला सेनापति—महाराज! (अचानक द्वार खुल जाता है, दोनों सेनापति उस कक्ष के भीतर प्रवेश करते हैं)।

दूसरा सेनापति—है! कहाँ गए महाराज? वे तो यहाँ नहीं हैं!

पहला सेनापति—मैंने क्या तुमसे झूठ कहा था?

दूसरा सेनापति—फिर किसकी थी यह वीर्य-मणि?

पहला सेनापति—यह पराजित राजा का अंतःपुर है होगी किसी अंतःपुर चारिणी की।

दूसरा सेनापति—वीर्य-मणि होगी किसी अंतःपुर-चारिणी की। लेकिन कहाँ है वह? किसी का एक पदांक भी तो ढूँढे नहीं मिलता!

पहला सेनापति—कोई अवश्य यह मर्म है यहाँ!

दूसरा सेनापति—कैसे कहते हो?

पहला सेनापति—वह वीर्य-मणि। पहले थी वह यहाँ पर?

दूसरा सेनापति—नहीं।

पहला सेनापति—फिर उसके होने का क्या अर्थ है?

दूसरा सेनापति—कुछ समझ में नहीं आता।

पहला सेनापति—महाराज ने क्यों द्वार बन्द कर दिए?

दूसरा सेनापति—क्यों किए?

पहला सेनापति—इस कक्ष में रहने वाली रमणी की कीर्ति-ध्वनि सुनने के लिये नहीं।

दूसरा सेनापति—स्पष्ट क्यों नहीं कहते ?

पहला सेनापति—महाराज को अवश्य यहाँ कोई मिल गई है।

दूसरा सेनापति—सम्भवतः सत्य है।

पहला सेनापति—इस कक्ष में तुमने पहले किसी की ध्वनि सुनी थी याद तो करो।

दूसरा सेनापति—हाँ याद तो आती है।

पहला सेनापति—तुम्हारा अनुमान ठीक ही है वीणा-ध्वनि उसकी आती है। इसलिये चलो भाग चलें। महाराज किसी आवश्यक काम से ही यहाँ गए हैं। उनका आगमन और अधिक यहीं स्पष्ट है। आते ही होंगे। चलो।

दूसरा सेनापति—चलो लेकिन हम बढ़ती हुई राज की आज्ञा का क्या करें ?

पहला सेनापति—जो भी होगा देखा जायगा।

[दोनों का जाना। कुछ देर बाद अकेली अपराजिता आती है और द्वार बन्द कर जल्दी जल्दी एक ताड़पत्र पर कुछ लिखकर उसे पढ़ती है फिर उसे अपनी कंचुकी के भीतर रख लेती है। वह कपोत के पिंजरे के पास जाती है और ज्योंही पिंजरे का द्वार खोलना चाहती थी बाहरी द्वार पर खट-खट होती है। अपराजिता दौड़कर उसे खोल देती है। चन्द्रविजय आता है।]

चन्द्रविजय—यही कक्ष मुझे प्रिय है क्योंकि यह तुम्हारा है। अब मैं प्रहरी को सावधान कर आया हूँ इधर वह किसी को न आने दे। (वीणा को दिखा कर) यह वीणा तुम्हारी ही है ?

अपराजिता—हाँ महाराज।

चन्द्रविजय—सुनूँ तो। तुम्हारे स्वर के प्रकाश से यह रात्रि सुवासित हो उठेगी।

अपराजिता—नहीं महाराज लोग क्या कहेंगे ?

चन्द्रविजय—तुम्हारा गीत सुन लेने पर फिर किसी का साहस न रहेगा

इधर आने का।

अपराजिता—आज क्षमा कर दीजिए, मेरी आँखें नींद से भारी हो उठीं।

चन्द्रविजय—अच्छा सो जाओ। कैसा अद्भुत यह हमारा और तुम्हारा मिलन है। यह एक दिन का परिचय नहीं जन्म-जन्मान्तरों का सम्बन्ध है। जिस तरह चाँद सूर्य की परिक्रमा करता रहता है जी चाहता है मैं भी ऐसे ही निरन्तर तुम्हारी प्रदक्षिणा करता रहूँ। जीवन की समस्त कामनाएँ इसी एक कर्म में विलीन हो जायें। (उसकी परिक्रमा करनी आरम्भ करता है। दोनों सेनापति फिर बाहर से आकर द्वार खटखटाते हैं। चन्द्रविजय क्रुद्ध होकर अपना खड्ग उठाता है) कौन है?

पहला सेनापति—(बाहर ही से) महाराज के प्रकाश के पुंज बराबर इसी दुर्ग की ओर बढ़ते चले आ रहे हैं। वे हमारे सैनिक नहीं हैं क्योंकि हमने मशालों से जो संकेत किए, उन्हें ग्रहण कर नहीं लौटाया गया। हमने भेरियों में भी उन्हें गुप्त संवाद दिए वे उन्हें समझकर कोई उत्तर नहीं दे सके।

चन्द्रविजय—(बिना द्वार खोले ही भीतर से) तो क्या विचार क्या तुम्हारा?

दूसरा सेनापति—उनके प्रकाश का हमारी ओर बढ़ने के उत्साह को देखकर तो यही जान पड़ता है वे कहीं से ठोस सहायता पाकर हमारे ऊपर आक्रमण करने आ रहे हैं।

चन्द्रविजय—जाने दो। इस अवसर में तुम्हारे जैसे डरपोकों की परीक्षा होनी उचित है।

दूसरा सेनापति—अगर रात ही में उन्होंने आक्रमण कर दिया तो?

चन्द्रविजय—क्या तुम्हारी सेना गोबर और मिट्टी की रचना है? तुरन्त चले जाओ मैं तुम जैसे कापुरुषों की कोई बात सुनने के लिये तैयार नहीं हूँ। हटो यदि खड्ग रखते हो तो उसका उपयोग करो नहीं तो मेरे बाण चलने से पहले ही कि अब-तक तुम्हारी समाप्ति हो जाय। (कुछ देर द्वार पर ध्यान लगाकर सुनता है) चले गए! (हँसता है) हा-हा! इन बिचारों को मालूम नहीं है—और इन आक्रमण करने वालों को भी नहीं कि संधि रत्न हमें मिल गया है।

(अपराजिता की ठोड़ी पकड़ता है) हाँ अपराजिते ! मेरे निकट आओ कि हमारे मिलन में दो विरह-विधुर प्राणों के शुचि-स्नात क्षण पर अंकुरित हो उठें। (ज्योंही उसका हाथ पकड़कर उसे अपनी ओर खींचने लगता है त्योंही नेपथ्य में प्रचण्ड स्वरों में भेरियाँ बजने लगती हैं। सैनिकों का कोलाहल सुनाई देता है। वह अपराजिता का हाथ छोड़कर उधर ध्यान देता है)।

अपराजिता—(वज्रविजय के सामने आकर) यह क्या हो रहा है ?

वज्रविजय—यह सन्निपात भेरी है।

अपराजिता—क्या अर्थ है इसका ?

वज्रविजय—मेरा प्रत्येक सेवक इसे सुनकर जहाँ भी जिस दशा में हो तुरन्त ही भेरी बजने के स्थान पर चला आता है यही इस भेरी का अर्थ है। इसकी उपेक्षा मृत्यु-दण्ड है। लाओ मेरा कवच पहना दो मुझे।

अपराजिता—(वज्रविजय का हाथ पकड़कर) लेकिन महाराज—

वज्रविजय—हो हो हृदयेश्वरी ! (द्वार का अर्गल खोलता है)।

अपराजिता—प्रियतम !

वज्रविजय—अभी क्यों नहीं ?

अपराजिता—आप अभी तक बिल्कुल निर्भय थे। सन्निपात भेरी के बज में प्राण भी हो जायें क्यों ? यह किसकी आज्ञा है ?

वज्रविजय—हाँ प्रिये। मैं ही इस आज्ञा का जनक हूँ। इसलिये मैं उसके व मन में मरण भी है। तुम विश्राम करो। (उसे शय्या पर सुला देता है) नहीं मैं यहीं नहीं जाऊँगा। कोई आवश्यकता नहीं रही।

[दासों सेनापति द्वार खोलकर भीतर आ जाते हैं। अपराजिता अपनी पीठ फिराकर मुँह ढक लेती है।]

प्रथम सेनापति—महाराज शत्रु ने आक्रमण आरम्भ कर दिया है। किन्तु (चकित होकर शय्या की ओर देखता है)।

वज्रविजय—(क्रोध के आवेग में) तुम बिना आज्ञा के मेरे कक्ष में क्यों चले आए ?

प्रथम सेनापति—राष्ट्रीय संकट के समय शिष्टाचार भूल जाते हैं।

वज्रविजय—ऐसा कहना तुम्हारी धृष्टता की पराकाष्ठा है।

दूसरा सेनापति—मानवता की पुकार के लिए, मर्यादा के मान के लिए, राष्ट्र-धर्म की रक्षा के लिए, जनमत के ऐसे भीषण आह्वान के समय—आप यह क्या कर रहे हैं?

वज्रविजय—क्या कर रहा हूँ?

पहला सेनापति—कर रहे हैं रक्त के खेल में रस की क्रीड़ा, युद्ध के मैदान में मद की लीला, मृत्यु के प्रांगण में मन्मथ की पूजा! क्या यह कभी भी अंधकार में आपने कर्मों की छाया नहीं दिखाई है?

वज्रविजय—क्या बकते हो? तुम मेरे नौकर हो।

पहला सेनापति—हम सब मनुष्यता के नौकर हैं। यदि हम राष्ट्र के सेवक नहीं हैं, उसकी आपदा के समय अपने इन्द्रिय-सुख के समर्थक हैं तो कामी विलासी और पशु हैं। मानवता के नाम के कलंक धरती-माता के भार हैं। हमारी वीरता हमारा शौर्य हमारा वज्र हमारा स्वार्थ और हमारी विजय दूसरे के सर्वस्व का हरण है।

दूसरा सेनापति—राजन् ऐसा ही है, इसीलिये हम कोई उत्तर नहीं दे सकते।

वज्रविजय—(माथा नीचा करता हुआ) अपराध हो गया मुझसे? क्या अपराध हो गया?

पहला सेनापति—आप सेवकों के आँसुओं पर अपनी पशु-कामना से खेलते हैं। रण की यह काल रात्रि और आप कामों में लेप भरकर चुप बैठे हैं? धिक्कार है! वह रणनिनाद भेरी बज उठी! उसके आह्वान पर सब अपने जीवन को हथेली पर रखकर उसके पीछे चल पड़े हो गए। आप क्यों नहीं आए? उत्तर दो।

वज्रविजय—यह मेरी पुकार है। उस आज्ञा का स्रष्टा मैं हूँ। पुकारने वाला नहीं नहीं जाता, सबको दिग्विजयी शक्ति अपने को नहीं देखती।

दूसरा सेनापति—धिक्कार है ऐसे स्रष्टा को जो संतान के प्राण से अपनी काम-ज्वाला बुझाता है।

कर्णविजय—यह सब तुम्हारा भ्रम है।

पहला सेनापति—यह भ्रम है ? (संकेत से शय्या में सोई हुई अपराजिता को दिखाता है) यह इतनी स्थूल साक्षी ! इसे भ्रम कहा जायगा ? चलो सेनापति ऐसे थोथे तर्क में हमें बहुमूल्य समय की आहुति देने से कोई लाभ न होगा।

दूसरा सेनापति—धिक्कार है ! थू !

पहला सेनापति—धिक्कार है ! थू !

[दोनों धरती पर थूक कर घृणा व्यक्त कर चले जाते हैं]

कर्णविजय—(मर्मान्तक पीड़ा का अनुभव कर दोनों हाथों से अपना माथा ठोकता है, फिर अपने खड्ग की ओर दृष्टि कर अपराजिता को देखता है) अभागिनी नारी !

अपराजिता—(इस सम्बोधन से घबराकर शय्या में उठ बैठती है) तुमने यह क्या कहा ?

कर्णविजय—कुछ नहीं।

अपराजिता—अवश्य कोई बहुत भारी आघात है तुम्हारा। (शय्या से उतरकर कर्णविजय का हाथ पकड़ लेती है)।

[कर्णविजय अपना खड्ग उठा लेता है]

अपराजिता—तुमने यह खड्ग क्यों उठा लिया ? और तुम्हारी आँखों में मुझे हिंसा कैसा हुई दिखाई देने लगा ?

कर्णविजय—इसका मतलब ? ... हमारे ... के ... । ओह ! कहाँ ... पर ... कर ... लिया। ... ! हे मेरे मौहर ! जीवन के इस पार अपमान का किसी प्रकार स्मृति के पटल पर से पुरुष कर भी मिटा नहीं सकूँगा। कैसी उसका मुँह धम्म हो ? क्या सचमुच मैं मैं कामी और कापुरुष हूँ ? (कुछ देर तक विचार करता है) नहीं ! ऐसा नहीं है। मैं कामी नहीं हूँ ! मैं कापुरुष भी नहीं हूँ ! मैं आवश्यकता पड़ने पर अपनी प्रियतम वस्तु की बलि भी दे सकता हूँ।

अपराजिता—(घबराकर कर्णविजय के गले में दोनों हाथ डाल देती है)

तुमने क्या कहा था ?

वज्रविजय—तुम वीरांगना हो। तुम्हें कदापि अपने स्वामी के मार्ग की बाधा बनना शोभा नहीं देता। तुम्हें तो उसका उत्साह बढ़ाने में सर्वस्व देने के लिये भी तैयार रहना चाहिए।

अपराजिता—प्रियतम ! प्राण !

वज्रविजय—हाँ प्रेम अमरत्व है। (उसके दोनों हाथ छिटकाकर) नहीं यह मेरी ही ध्वनि है। मुझे भी उसमें बँधना होगा।

अपराजिता—ठहरो न। मुझे भी चलने दो अपने साथ। तुमने कहा था—

वज्रविजय—नहीं ! (उसके पेट में खड्ग भोंक देता है)।

अपराजिता—(धरती पर गिरती हुई) ओ ऽ ऽ ! पापी ! हत्यारे !

वज्रविजय—तुम्हारी गाली भी मुझ फूलों की वर्षा है पर उनकी भर्त्सना भयानक वज्रपात ! अपराजिते तुम्हें एक ही निशा की कुछ घड़ियों में समस्त प्यार दिया यही संसार को समझा दो उधर और यही तुम्हारे वध का कारण बन गया ! तुम्हारे जीवित रहने पर मुझे फिर फिर ऐसा ही मोह करना पड़ता और तुम्हें बार-बार मुझे अपमानित करने के अवसर मिलते रहते। इसीलिये ! तुम्हें इसीलिये ! अवश्य ही तुम्हारा अपराधी हूँ। (उसके पेट से खड्ग बाहर निकालकर उसके हाथ में देता है) इस खड्ग से मेरा मस्तक उड़ा दो अब तुम्हारी बारी है। मैं हँसते हुए प्राण दे दूँगा। (अपराजिता के शिथिल हाथों से खड्ग नीचे गिर पड़ता है। वज्रविजय उसकी कंचुकी से बाहर गिरते हुए उस ताड़-पत्र को देखता है) हैं ! यह कैसा ताड़ पत्र है ? (उसी समय धीरे-धीरे फिर वे दोनों तपस्वी वहाँ प्रवेश करते हैं) इसमें कुछ लिखा है। पढ़ूँ तो। (पढ़ता है)— योजना सफल हो गई ! मैंने वज्रविजय को अपने जाल में फँसा लिया। एक-आध घड़े में मैं इसे समाप्त कर डालूँगी। दुर्ग के द्वार पर तीन बार बिगुल बजाना। मैं उसे खोल दूँगी— तुम्हारी विषकन्या !" विष-कन्या ! हैं ! विषकन्या ? (अपराजिता छटपटाकर प्राण त्याग देती है) अपराजिता ! क्या अभी ! ऐसी स्वामी ! इतनी मोहमई ! अब भी तो इसके लिए मेरे अधर काँपते और सीमते हैं। (

धीरे उसकी ओर मुँह बढ़ाता है और पहले सेनापति की खाँसी सुनकर चौंकता है और उनकी तरफ देखता है) कौन सेनापति ? मैं विष का ग्रास हो गया था ! वह विष कन्या है ? कितनी दुस्साहसी ! वह उसका रहस्य ! (ताड़-पत्र को दिखाता है) और यही तो शायद सिखाया हुआ कपोत है जिसके गले में बँधकर यह संदेश शत्रु के पास पहुँच जाता। क्या तुमने ही मेरे प्राण बचाए ? (फिर सन्निपात भेरी बजती है) फिर बज उठी यह सन्निपात भेरी! काँपनेवाला सबसे पहले मैं—यही विधान की सार्थकता है और यही उसकी शक्ति ! (तलवार सँभाल, कवच उठा पहनते हुए बाहर को दौड़ता है)।

दोनों सेनापति—(उल्लास में भरकर) महाराज चन्द्रविजय की जय ! (दोनों चन्द्रविजय का अनुसरण करते हैं)।

[परदा गिरता है]

पात्र

सेठ मनोहर

मालिनी

उसकी स्त्री

फागुन

उसका नौकर

पंडितजी ज्योतिषीजी हकीमजी प्राकृतिक चिकित्सक

डॉक्टर और ओझा

देश—सेठ मनोहर के सोने का कमरा

काल—एक रात और उसकी सुबह

जानता है पर जब मोटी होने से समूचा हाथ बाहर निकल आता है) फूटे और फूटी तकदीर। (माथे पर हाथ मारता है) भामिनी भी दया भी देना नहीं चाहती। (कोट खोलकर खूंटी पर टाँग देता है) कम्बख्त उधार के माँगनेवाले! (गुस्सा होकर घूँसा तानता है) अब मेरी दुकान का रास्ता ही भुला बैठे हैं! (हथेली में घूँसा मारकर) मालिश कर दूँगा जी। मालिश (बिस्तर की ओर बढ़कर कम्बल खींचता है अचानक सिर पर हाथ रखकर मालूम करता है कि अभी टोपी नहीं उतारी है। टोपी से लोटा ढँक देता है। लटककर कम्बल ओढ़ हलका गुनगुनाना आरम्भ करता है) गुड़ गुड़

[भीतर बर्तन मलने की आवाज। सेठजी हलका गुनगुनाते सो जाते हैं। भामिनी कागज की एक पुड़िया लेकर आती है।]

भामिनी—हैं! इनकी गुनगुनी तो सिल के पत्थर की तरह चुप हो गई। सो गए क्या? (धीरे से आवाज देकर) अरे ओ श्यामू। एक लोटे में पानी भरकर ले आना। हा भगवान्! हाथ धोके न देखे न सही कानी कैंची में भी तो कोई कमी नहीं है! मैं इसी इच्छा को लेकर यहीं हो कोठरी पर इन्हें क्या? इनका दिल जायगा धीज जायगा पर भिखारी भामिनी देवी को फूटी कौड़ी भी न मिलेगी।

फागुन—(धोती से हाथ पोंछते हुए आता है) और यह गरीब फागुन भी हमेशा अपनी तनख्वाह के लिये तरसता ही रह जायगा।

भामिनी—क्यों रे कितने महीने की तनख्वाह बाकी है तेरी? सेठजी तो पहले न सब चुकाते हैं।

फागुन—तुम्हारे भुलावे में कभी भूल नहीं सकता। फागुन भी अब बहुत दिन से शहर में रहने के सबब हद से ज्यादा होशियार हो चला है। उसे पत्ते के पीछे बड़ा करते और बिजली की रोशनी में बर्तन मलते बरसों बीत गए हैं।

[लम्बोदर और घूमकर आप नापता है और उठकर भामिनी को पुकारता है। फागुन खिसक जाता है।]

लंबोदर—अरी बारह बज चुके हैं! कुछ सुध होश भी है? सारी दुनिया सो गई पर तेरी लड़ाई अभी तक नहीं मजरी है। मुझे सोकर नाक बजाने के

लिए सारा दिन पड़ा हुआ है, पर मुझ कमबख्त को तो सुबह पांच बजे दुकान खोलनी है।

मालिनी—तो एहसान किस पर है? बिना सोचे समझे ही कम फंसा देते हो। उसी दुकान में "सविता" और "श्रीगणेशायनमः" लिखने के लिए इंतजाम कर रही थी। समता की बात तो उसी में चलाई।

मनोहर—(जल्दी से नरम पड़कर) अच्छा अच्छा ऐसी बात है, तब ठीक है।

मालिनी—(मुंह बनाकर नाराज हो जाती है) जरा भी तो समझ नहीं।

मनोहर—(उठकर उसे मनाने भूमि पर आ जाता है) क्यों? नाराज हो गई? (उसका हाथ पकड़ना चाहता है)।

मालिनी—(दूर हट जाती है) रहने दो अपनी चतुराई। मैं नहीं बोलती तुमसे।

मनोहर—(फिर उसके मुंह की तरफ जाता है) यों ही हंसते-हंसते नाराज हो जाती हो भला यह भी कोई बात है। (कुछ देर हाथ जोड़ खुशामद कर, उसे मनाता है पर वह नहीं मानती तो खुद भी रूठ जाता है) अच्छा तो नहीं बोलोगी? (मालिनी मुंह फिरा चुप रहती है) पक्की बात? मालिक की अपने घर में कोई जगह ही नहीं? मालिनी! तुम्हें बगान में बुल्लू की मैं मिठाई इतनी अधिक नहीं खिलाऊँ जितनी ज्यादा मिर्चें—लाल मिर्चें! हो गया फिर? नहीं बोलोगी? (मालिनी नहीं बोलती। मनोहर पैर पटक पंखा खोलकर सो जाता है। हुक्के में से एक-दो दम खींचता है पर नहीं जाता) लोगो के भूख गए! (नाली दूर कर मुंह ढक सो जाता है)।

मालिनी—(अंगूठा दिखाकर) नाराज हो गए तो क्या? मनाएँ किसी और को। मालिनी के गुस्से के लिए भी पत्थर एंजिन चाहिए।

कल्लू—(द्वार में से धीरे-धीरे मुंह निकालकर झांकता है) सेठजी सो गए क्या?

मालिनी—मैं क्या जानूं? बदतमीज! बड़ा लापरवाह है तू। मैंने तुमसे क्या करने को कहा था?

झाड़कर चारपाई बिछा दी है।

फागुन—मगर यह कंबल ज़मीन पर कैसे फैल गया ? (चारपाई बिछाता है)।

मनोहर—चुप रह। बहुत बातें बनाएगा तो जुबान और तनख्वाह दोनों काट दी जाएँगी। (तम्बाकू गुड़गुड़ाता है)।

भामिनी—(भीतर से पुकारती है) फागुन ! ओ फागुन !

मनोहर—वह सुन मालकिन तुझे बुला रही है। जा चला जा।

[फागुन जाता है]

मनोहर—गुड़ुक गड़ुक गुड़ुक ! वाह वा ! विवाह के पहले की प्रीति और पीछे आने से पहले का हुक्का—इन दोनों का जवाब दुनिया में कहीं नहीं मिलता। गुड़ुक गुड़ुक—ऊँऽऽ ! (गुड़गुड़ी छोड़कर उठता है। खूँटे के पास जाता है। उसके ऊपर से टोपी उठाते हुए) जाते वक्त सिर नंगा और आते समय सिर ढका होना चाहिए ऐसा वेद में लिखा है। इस पर बड़ा वाद-विवाद में मनन किया है। मनोहर भी इसकी पूँछ यों ही न छोड़ देगा। (टोपी पहनकर सोटा उठाता है। फिर ज़मीन में बैठकर हुक्के की नली मुँह में दबा गुड़गुड़ाने लगता है फिर पैर में स्लीपर डालकर चला जाता है)।

[फागुन आता है]

फागुन—हुक्के को रात तक चल गए होंगे। (चिलम उठाकर दम खींचता है धुआँ छोड़कर) ऐं ! है अभी तो बहुत कुछ है। (फिर दम खींचता है)।

भामिनी—(आकर उसके एक धप जमाती है जिससे उसकी टोपी ज़मीन पर गिर पड़ती है) कमबख्त ! जब देखो तभी चर्चा उगलता रहता है। यह तेरा बाप है ना—

फागुन—हुज़ूर देख का [illegible] !

भामिनी—(एक धप और जमाकर) मैंने तुझसे चाय के लिये दूध लाने को कहा था।

फागुन—(टोपी उठाकर पहनते हुए रोने के स्वर में) तो मैंने कब लाने से इनकार किया ? भैया जी की धोती और पैंतोफ़ा लेने गया था। इधर इस

रसभरी चिलम को देखकर अमल जाग पड़ा। अमल में कई हजार घोड़ों की ताकत है ऐसा अखबारवालों ने छापा है।

मालिनी—आग लग तेरे अमल के सिर में।

फागुन—यह भी क्या मज़ा है बिना आग के धुआं कहां? एक दम और खींच लेने दो सरकार! कहां चालीस कहां पचपचालीस! कुछ ही कसर रह गई है, नहीं तो सारा दिन खराब हो जायगा। (फिर पीने लगता है)।

मालिनी—मैं हरगिज कुछ अब न पीने दूंगी। (फागुन के हाथ से चिलम छीन हुक्के पर रख देती है) देख तूने कितनी मर्तबा तमाखू न पीने की कसमें खाई हैं।

फागुन—मगर सरकार यह कभी का छूट गया होता अगर एक ऐब न होता तो।

मालिनी—ऐब कौनसा?

फागुन—यही कि अगर सेठजी के लिये दिन में दस रुपये न भरना पड़ता तो। मेरी चिलम के पुरपटाम नहीं है। मैं अगर सब को इसे छोड़ दें तो सेवक इसी बड़ी में इसकी परवाह भी न जायगा।

मालिनी—यह तमाखू की बीमारी ठीक नहीं जान पड़ती। मकान का हर कोना इसके धोयले-धूम से काला है। पानदान मेरा नया लिहाफ और इस साल मेरी रेशमी साड़ी दोनों इसी की बदौलत जले। वे इसी को मुँह लगाए रहने से वक्त पर भोजन नहीं करते और तू इसी की टोह में काम छोड़-छोड़कर भग देता है। अब नहीं सहा जा सकता! (भृकुटी तानकर हाथ ऊंचा करती है) मैं अपने घर से इसकी जड़ खोदकर फेंकूँगी।

फागुन—बस गोर दुरी! यह असम्भव है, इसकी जड़ नहीं हो तो आप इसे खोदने की मेहनत भी करें। बात ऐसी है, संतोखर जी की हर नस और रोम रोम में तमाखू का धुआं बस गया है—अब कुछ नहीं हो सकता देवी जी! इसलिए यह सेवक को आपके चरणों में विनती करता है कि इसे एक दम और खींच लेने दीजिए।

मालिनी—ला चिलम पहले इधर ला।

[फागुन निराश हो खूँटी पर से सेठजी की धोती और अँगोछा उतार लेता है ।]

मालिनी—मैं नहीं जानती यह बदबूदार क्यों तुम लोगों को इतना प्यारा क्योंकर हो गया ?

फागुन—उसमें खुशबू आती जाती है ।

मालिनी—बस ! बस !

[दोनों जाते हैं । नेपथ्य में सेठजी का कराहना सुनाई देता है]

मनोहर—(भीतर से) ओ ऽ ह, ओ ऽ ऽ ! (सेठजी जमीन पर बैठते-बैठते आते हैं और अपना पेट दबाते हैं मानो कई दिन से बीमार हों) अरे बापरे ! सब नाश हो गया ! खून की न जाने कितनी नदियाँ बह गईं ! हाथ-पैर मोटा-सोटा—सबके सब नाश ! बड़ी मुश्किल से हाथ-पैर धो सका । एक-एक मिनट में शरीर से ताकत निकलती चली जा रही है सिर चकराता है । आखिर इसका कारण क्या है ? चार के चार टिक्कड़ तीन तोला मूली का रस और थोड़ा-सा उसी के पत्तों की भुजिया और क्या मैंने खाया रात को ? (खड़ा होता है) हैं ! सिर घूमता है । (फिर बैठ जाता है) मझी कुछ नहीं कर सकती जरूर किसी ने कोई जादू कर दिया । नहीं बच सकता ! यह पड़ोसियों की आँख का काँटा मनोहर आज के दिन बच नहीं सकता । (चारपाई पर लेट जाता है) नीम के पेड़-वाले के ब्रह्म बाबा महाराज ! सुधि लीजिए तो हुक्म पाने ऐसा करूँगा । (दर्द मालूम कर) उफ ! छोटी-छोटे दौन-वाले बिच्छुओं के डंक और भी न जाने क्या-क्या चुभ रहे हैं । (कंबल ओढ़ लेता है) ।

फागुन—(काम लेकर आता है) हैं सरकार ! फिर भी मर गया ?

मनोहर—कर दिया ! कर दिया ! अरे बाप रे ! (करवट बदलता है) ।

फागुन—किसने कर दिया ?

मनोहर—क्या जानूँ ? बता सकता है मालिनी ने तो नहीं कर दिया कुछ ? वह कल नाराज हो गई थी । खाने में कुछ ? थू ! थू ! नहीं नहीं फागुन मैं अपने शब्द वापस लेता हूँ ।

फागुन—क्या कह रहे हैं आप यह ?

संबोधर—मेरा मतलब है अगर मुझसे में कोई चीज परोसी जाती है तो वह खाना भी जहर हो जाता है। लेकिन खाना जिसमें आप वे नाराज हुई।

फागुन—(एकदम घोल सेठजी की शक्ल देखकर) क्या हो गया आपको यह ? एकाएक शक्ल ही बदल गई आपकी ? अभी अच्छे भले बनन तो आप मन-चंगे थे !

संबोधर—अरे आग-लगा यम राम की नन्हिया नदियों का महासमुद्र ! ओह नहीं सहा जाता !

फागुन—यह खून का महासमुद्र ! कहाँ सरकार ? आप किसी सिनेमा या सपन की कहानी तो नहीं कह रहे हैं ?

संबोधर—अरे बिलकुल आँखों-देखा सच्चाई ! वह खून भी किसी और का नहीं इसी बिचारे संबोधर का।

फागुन—हैं ! आपका ही खून ! (चकित हो चाय का गिलास भूमि पर रख संबोधर की ओर बढ़ता है) कहाँ ? किधर ?

संबोधर—अरे पेट में। (पेट को दबाता है)।

फागुन—पेट में क्या ?

संबोधर—पेट में ही तो।

फागुन—क्या किसी पुराने कलदार ने छुरा तो नहीं भोंक दिया ? (कंबल हटाकर उसके पेट को देखता है) आप सलामत तो नहीं हैं सरकार !

संबोधर—अरे छुरा चाकू कुछ भी नहीं आप भीतर से ही गया जान पड़ता है। ओह ! मरा-मरा अब तो नहीं बच सकता।

फागुन—हजो सरकार ! अभी भी घबरा जाने को क्या काम है ? कोई बेचैन किसी या कच्ची रोटी हजम हुई है शायद पेट में। (चाय का गिलास उठाकर) लीजिए यह गरमागरम चाय गटक लीजिए। इससे वह रोटी गरम पड़कर अपने-आप नीचे को सरक जायगी।

संबोधर—अरे रोटी बोटी कुछ भी नहीं अटकी। यहाँ तो कहीं खून इस शरीर का बह गया।

फागुन—फिर वही खून। आपको बवासीर तो नहीं ?

लंबोदर—चुप रह। क्या गंदा नाम लिया ? बवासीर हमारे पिताजी की सी पुश्तों में से एक को भी नहीं हुई।

फागुन—तो क्या हर्ज है ! चाय नुकसान तो कभी करती ही नहीं। इसकी पत्ती-पत्ती में गुन भरे हुए हैं ठंडी हुई जा रही है। बीमारियों की आधी बटा-लियन को तो चाय यों ही पस्त कर देती है। लीजिए, पी लीजिए, अभी साबित हो जायगा। (लंबोदर के मना करते रहने पर भी उसके होठों तक चाय का गिलास बढ़ा ही देता है)।

लंबोदर—(हाथ मारकर चाय का गिलास दूर फेंक देता है) उल्लू ! गधे ! तुझे क्या हो गया ? मैं तो मर रहा हूँ और तुझे हँसी सूझी है। (दर्द से चीखता है) मरा मरा ओ बाप रे बड़ा दर्द है। मालिनी ! अरे तुम क्या इस तरह खड़ी ही रहोगी ?

फागुन—तो क्या मामला संगीन है ?

लंबोदर—और नहीं तो क्या ? सिर में दर्द हो गया और बुखार भी चढ़ गया। नाड़ी देख चल कहाँ रही यह तो फड़क रही है। अरे, खून ही को लेकर तो इस खाक के पुतले में करामात है वह जब छप-छप-छप निकलकर बह गया तब मिट्टी के सिवा और क्या बाकी रह जायगा ? ओह ? दर्द ! दर्द ! पीड़ा ! पीड़ा !

फागुन—क्या गई फिर ?

लंबोदर—अरे जो भी कहता है चुप कर जल्दी ही लेकिन ऐसा जान पड़ता है मेरी नली में बिना बाहरी मदद लिए यह दर्द इस घर के बाहर जाने वाला नहीं है।

फागुन—यानी आपका मतलब है डॉक्टर को बुलाकर पेट में ऑपरेशन कराना जरूरी है।

लंबोदर—अरे रे ! क्या बकता है यह ?

फागुन—फिर किसको जाकर कहूँ ?

लंबोदर—अरे पहले घर की मालकिन को तो बुला। मैं मरने को तैयार

हूँ और वह अभी तक अपना गुस्सा जारी रखे हुए है। (जोर से पुकारकर) मालिनी! मैं मरता हूँ और तुम्हारे क्रोध के लिए क्या दूसरी घड़ी न आएगी?

मालिनी—(आकर बड़ी चिंता के साथ) हैं! तुम्हें यह एकाएक क्या हो गया?

मनोहर—उफ़ दर्द! दर्द! हर नस हर नाड़ी में दर्द! हर हड्डी हर पसली में दर्द! साँस साँस में दर्द—तिल तिल में बेचैनी! (छटपटाता है) और तुम मुँह फुलाए बैठी हो?

मालिनी—नहीं नहीं कौन कहता है? क्यों रे फागुन?

फागुन—नहीं सरकार! अगर ऐसा होता तो चाय बनाकर क्यों लातीं?

मालिनी—रात तो आप बिलकुल अच्छे थे।

मनोहर—सुबह तक अच्छा ही था। यह तो अभी अभी-अभी! खून-खून खून! लाल-लाल-लाल! एक दम लाल समन्दर! मालिनी देवी अब नहीं बच सकता। (हाथ-पैर फेंकता है)।

मालिनी—कैसा लाल समुन्दर? कुछ साफ-साफ तो कहो न?

फागुन—अभी इसका मतलब मैं समझाता हूँ। अभी अभी दिया जाने से पहले ये बिलकुल दुरुस्त और चौकस थे। कहीं इन्हें न जाने किसका खून दिखा कि इनकी ऐसी हालत हो गई।

मालिनी—खून दिखने का कोई कारण नहीं।

मनोहर—हाँ मालिनी कोई गड़बड़ चीज न तुमने खिलाई और न मैंने खाई।

मालिनी—फिर क्या बात हो गयी है और?

फागुन—भगवान् ही जानें।

मालिनी—दूकान में तो किसी ने कुछ नहीं खिला दिया इन्हें?

फागुन—मैं क्या जानूँ?

मनोहर—अरे मेरी जान जा रही है और तुम खड़े-खड़े बहस ही करते रहोगे क्या?

मालिनी—जा फागुन जा जल्दी से किसी डॉक्टर को बुला ला।

लंबोदर—अरे नहीं नहीं डॉक्टर को मत बुला।

मालिनी—तो क्या फिर किसी हलवाई को बुलाऊँ ?

लंबोदर—ज़रा धीरे से कुछ ठीक-ठीक बोलो मालिनी जो बात ठीक हो वही करो।

मालिनी—बताते क्यों नहीं फिर ठीक बात क्या है ?

लंबोदर—हमारे सभी की नोक पर तो वैद्यजी रहते हैं। वे हमारे पिताजी के समय से हमारे सुख-दुख के साथी हैं। (फिर पीड़ा जाहिर करता है) ओह ! दर्द ! हाय ! और मालिनी वैद्यजी बड़े भले आदमी हैं। पास ही हैं—दिन में चार दफे भी बुलाओगी तो भी कोई फीस नहीं लेंगे। हाँ दवा के दाम ? उन्हें कौन छोड़ता है ?

मालिनी—खड़ा क्या देख रहा है जा फागुन बुला ला।

[फागुन जाता है मालिनी सेठजी की परिचर्या में लगती है]

[परदा गिरकर उठता है]

तीसरा दृश्य

[वही कमरा उसी दिन सुबह ज़रा देर बाद। लंबोदर उसी तरह बीमार पड़ा है। मालिनी उसके सर दबा रही है।]

लंबोदर—हे भगवान् नहीं सहा जाता अब तो किसी तरह बरदाश्त नहीं होता मालिनी। यह किस जनम के पापों का ब्याज चुकाना पड़ा ?

[फागुन के सिर पर थैला रखकर दवा ढोते हुए वैद्यजी का आना]

फागुन—ला सँभाल सरकार ! और दवा भी मेरी खोपड़ी पर फटती हुई चली आ रही है। अब आपके मन होने में क्या शक है ?

वैद्यजी—हाँ इसमें क्या कि लंबोदर जी के पेट में दर्द है। मुझे आने में ज़रा भी देर नहीं लगी कि कहीं पुराना वायु का कोप फिर उभरने लगा होगा। मेरे पास दवा तैयार न थी। समय की बचत के लिये ऐसा किया। दवा भी घर गई रास्ता भी कट गया। (फागुन के सिर से थैला उतार लेता है)।

लंबोदर—कृपा तो बहुत बड़ी की आपने लेकिन इस बार मैं बड़ी मुसीबत

बीमारी बता दी आपको।

चम्पा—पेट में दर्द नहीं था फिर और क्या कहता था?

मनोहर—कहता था कि पेट से गुल गिरा है। वैद्य से बीमारी छिपाने से फायदा?

वैद्यजी—एक ही बात है सेठजी।

मनोहर—एक ही बात नहीं यह वायु का गोला नहीं है।

वैद्यजी—यही वही है दूसरा हो नहीं सकता। मैं बहुत दिनों से इसे पहचानता हूँ। (बस्ते से दवा निकाल उसकी गोली बनाकर) लीजिए इस गोली को गरम पानी के साथ निगल लीजिए।

मनोहर—नहीं! नहीं!

वैद्यजी—मैं कहता हूँ जरा भी कड़वी नहीं है। बड़ी स्वादिष्ट! बड़ी मजेदार! स्वस्थ हो जाने पर भी आप इसे खाना पसन्द करेंगे।

मनोहर—अजी वैद्यजी गुल गिरा है गुल और दवा देते हैं वायु के गोले की।

वैद्यजी—कितनी बार गुल गिरा?

मनोहर—एक ही बार में निचुड़-निचोड़ में पड़े हुए नींबू की तरह निचुड़कर रह गया हूँ आप कहते हैं कितनी बार?

वैद्यजी—जरा नाड़ी तो दिखाइए। (नाड़ी हाथ में लेकर) बात वही है सेठजी! यह वही वायु का गोला है। जरा पेट तो दिखाइए। (हाथ से पेट को दबाकर) गोला किधर गया? इधर? उधर? नहीं यहीं नहीं। (कुछ सोचकर) ठीक है! एक तरफ से पित्त और दूसरी ओर से कफ की नाड़ी के धारण में टकरा जाने के सबब बीच में पड़े बिचारे उस वायु के गोले में पंचर हो गया।

चम्पा—बिचारे वायु के गोले से? सुबह-सुबह इतना बड़ा तूफान खड़ा कर दिया उसने हमारे घर में आप उसे बिचारा कहते हैं!

वैद्यजी—बीच में नहीं बोलते। उसी वायु के गोले के फटने से तुम्हें यह दम दिया है। यही दवा काम करेगी मगर गरम पानी के बदले ठंडा पानी

संबोवर—अरे नहीं नहीं डॉक्टर को मत बुला।

मालिनी—तो क्या फिर किसी हलवाई को बुलाऊँ ?

संबोवर—जरा धीरे से कुछ ठीक-ठीक बोलो मालिनी की बात ठीक ही नहीं करो।

मालिनी—बताते क्या नहीं फिर ठीक बात क्या है ?

संबोवर—अभी गली की मोड़ पर तो वैद्यजी रहते हैं। वे हमारे पिताजी के समय से हमारे सुख-दुख के साथी हैं। (फिर पीड़ा जाहिर करता है) ओह! दर्द! दर्द! और मालिनी वैद्यजी बड़े भले आदमी हैं। पास ही है—दिन में आठ दफा भी बुलाओगी तो भी कोई फीस नहीं लेंगे। हाँ दवा के दाम? उसे कौन छोड़ता है?

मालिनी—मैं क्या देख रहा है जा फागुन बुला ला।

[फागुन जाता है मालिनी सेठजी को परिचर्या में लगती है]

[परदा गिरकर उठता है]

तीसरा दृश्य

[वही कमरा उसी दिन सुबह जरा देर बाद। संबोवर उसी तरह बीमार पड़ा है। मालिनी उसके घर दबा रही है।]

संबोवर—हे भगवान् नहीं सहा जाता अब तो किसी तरह बरदाश्त नहीं होता मालिनी। यह दिन भगवान न लाता या ज्यादा बुलाता रहा ?

[फागुन के सिर पर खरल रखकर दवा घोंटते हुए वैद्यजी का प्रवेश]

फागुन—हा ठैया सरकार! और दवा भी मेरी खोपड़ी पर घुटती हुई चली आ रही है। अब आपके अच्छे होने में क्या शक है ?

वैद्यजी—हाँ इसन नहूं कि संबोवर जी के पेट में दर्द है। मुझे यहाँ आने में जरा भी देर नहीं लगी कि वही पुराना बाप का चोला फिर मुझसे लगा होगा। मेरे पास दवा तैयार न थी। समय की बचत के लिये उठा लिया। दवा भी घुट गई रास्ता भी कट गया। (फागुन के सिर से खरल उतार लेता है)।

संबोवर—कृपा तो बहुत बड़ी की आपने लेकिन इस बहू से बड़ी बदल

बीमारी क्या [illegible] आपको।

[illegible]—पेट में दर्द नहीं या सिर और [illegible] कहना था ?

संतोसर—कहना था कि पेट में लून दिया है। पेट के [illegible] [illegible] के [illegible] ?

बैरागी—एक ही बात है भैया।

संतोसर—एक ही बात नहीं, वह बात का तौला नहीं है।

बैरागी—[illegible] नहीं है [illegible] हो नहीं [illegible]। मैं [illegible] पहचानता हूँ। (बगल से दवा निकाल उसकी दोनों [illegible]) [illegible] दोनों को गरम पानी के साथ निगल जाइए।

संतोसर—नहीं ! नहीं !

बैरागी—मैं कहता हूँ जरा भी [illegible] नहीं है। [illegible] [illegible] ! [illegible] हो बात कर या [illegible] ऐसे [illegible] पसन्द करेंगे।

संतोसर—[illegible] बैरागी [illegible] दिया है [illegible] [illegible] है [illegible] की।

बैरागी—कितनी बार [illegible] दिया ?

संतोसर—एक ही बार में [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] रह गया हूँ [illegible] है कितनी बार ?

बैरागी—[illegible] [illegible] [illegible]। (नाड़ि हाथ में लेकर) [illegible] है [illegible] ! यह मैं क्या बात का देखा है। [illegible] [illegible]। ([illegible] की [illegible]) [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] नहीं [illegible]। ([illegible]) ठीक है ! एक [illegible] [illegible] और [illegible] [illegible] के [illegible] के [illegible] में [illegible] के [illegible] में [illegible] [illegible] [illegible] के [illegible] में [illegible] हो [illegible]।

[illegible]—[illegible] [illegible] के [illegible] है ? [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] कर दिया उसने [illegible] घर में [illegible] [illegible] [illegible] है !

बैरागी—बीच में नहीं बोलते। [illegible] [illegible] के [illegible] के [illegible] से [illegible] [illegible] दिया है। [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] [illegible] पानी के [illegible] [illegible] [illegible]

ऐसा होगा।

जामुन—अभी लाता हूँ। (जाता है)।

संबोधर—वैद्यजी यह जड़-पत्ती हींग-नमक हर्रे-आँवले से कुछ न होगा मेरे लिये तो कोई पुराना रसायन निकालिए। (दर्द प्रकट कर) हाय! मैया रे!

मालिनी—वैद्यजी मेरी लाज तुम्हारे हाथ है।

वैद्यजी—घबराने की कोई बात नहीं है अभी तबीयत ठीक हुई जाती है।

संबोधर—कैसे वैद्यजी कैसे?

वैद्यजी—विश्वास से विश्वास है आपका मुझ पर तभी तो आपने मुझे बुलाया है विश्वास मेरी दवा पर भी होना चाहिए तभी तो काम चलेगा। (गोली बनाता है)।

जामुन—(एक गिलास में पानी लेकर आता है) लीजिए।

वैद्यजी—(गोली देते हुए) लीजिए इसे निगलिए। दवा गले के नीचे उतरते ही अपना बिजली का असर दिखाएगी।

संबोधर—(गोली लेकर पानी से निगलता है। दवा कड़वी होने के कारण मुँह बनाता है) थू-थू! आप तो कहते थे बड़ी जायकेदार है! यह तो बड़ी कड़वी है।

वैद्यजी—उपदेश और दवा कड़वी होने पर भी निगलने योग्य होते हैं। देखिए अभी आपकी पीड़ा उन्नीस होती है।

संबोधर—हूँ हूँ! (दर्द से चिल्लाता है) मरा! मरा! वैद्यजी यह तो इक्कीस होने लगी। क्या खिला दिया आपने? जमालगोटा तो नहीं?

वैद्यजी—सेठजी एकदम घबरा जाते हैं आप तो बच्चों की तरह। बीमारी आपको कुछ नहीं है। (नब्ज हाथ में लेकर) सब निकल गई। खराब खून को था वह बह गया सिर्फ कमजोरी बाकी है। यह भी अभी छूमन्तर होती है।

संबोधर—कमजोरी कहाँ? अभी तो दर्द ही हो रहा है।

वैद्यजी—यह मामूली गोली नहीं है। नाक के रास्ते चाहे जाय तो कंठ के ऊपर के तमाम रोगों का नाश कर दे और अगर मुँह के मार्ग से निगली जाय

तो कंधे के मोचे की तमाम बीमारियाँ रफा ! अभी आपको कुछ समझ नहीं और की। (मालिनी से) जाइए आप तब तक चश्मा बनाइए।

संबोदर—नहीं नहीं मालिनी कहीं न जाना। मेरी तबीयत घबरा रही है।

वैद्यजी—अजी सेठजी यह मामूली गोली नहीं है। तोप में भर दी जाय तो लंका को फूंक दे। अभी ठीक हो जायेंगे आप। चार गोली और दे जाता हूँ। घंटे घंटे-भर में पहली शहद के साथ, दूसरी दही के, तीसरी दूध के और चौथी घी के साथ खाइए। मुझे बराबर खबर देते रहें। एक दूसरे बीमार को देखने जाना है अभी, इसी से जल्दी है। (मालिनी को गोलियाँ दे चरक बगल में दबाकर जाना)।

फागुन—मामला गड़बड़ देखकर द ता खिसक गए।

संबोदर—(फिर हाथ-पैर पटकता है) अरे मैया रे! मरा रे! अरे फागुन किसी और को बुला रे!

फागुन—किसे बुलाऊँ?

संबोदर—किसी अच्छे को बुला जिसके साथ अपना मन मिलता हो।

[फागुन का जाना। पोथी-पत्रा बगल में दबाए ज्योतिषीजी का आना]

ज्योतिषीजी—जय हो! जीते रहो जजमान! (सेठजी को देख चौंकता है) हैं! यह क्या? आपका चेहरा तो साल भर के बीमार का सा हो गया। क्या हुआ? कल ही तो आपको भला-चंगा देखा था मैंने।

संबोदर—ग्रहों का फल ज्योतिषीजी। अरे मरा रे! बड़ा कष्ट है।

मालिनी—कुछ पोथी पत्रा खोलिए, ग्रह-नक्षत्रों को विचारिए, इन्हें कौन-सा दुर्योग लग गया?

ज्योतिषीजी—इसमें सोचने की बात नहीं है सेठानी जी। मैंने पिछले सूर्य-ग्रहण पर सेठजी से कहा था कि पंच पल्लव, पंच पात्र और नव रत्नों की एक पुतला बना भुजली हुई दही से उतार कर अपने शरीर की। न जाने क्या समझे थे। मैंने दुबारा फिर नहीं कहा इनसे। मुझे तुम्हारे धन का लोभ नहीं। (बैठकर पोथी-पत्रा खोल उँगलियों से कुछ गिनता है)।

पैसा होगा।

फागुन—अभी लाता हूँ। (जाता है)।

लंबोदर—वैद्यजी यह जड़-बूटी हींग-नमक चूर्ण-फांकने से कुछ न होगा। मेरे लिये तो कोई पुराना रसायन निकालिए। (दर्द प्रकट कर) हाय! मैया रे!

मालिनी—वैद्यजी मेरी लाज तुम्हारे हाथ है।

वैद्यजी—घबराने की कोई बात नहीं है अभी तबीयत ठीक हुई जाती है।

लंबोदर—कैसे वैद्यजी कैसे?

वैद्यजी—विश्वास से विश्वास है आपका मुझ पर तभी तो आपने मुझे बुलाया है विश्वास मेरी दवा पर भी होना चाहिए तभी तो काम चलेगा। (गोली बनाता है)।

फागुन—(एक गिलास में पानी लेकर आता है) लीजिए।

वैद्यजी—(गोली देते हुए) लीजिए इसे निगलिए। दवा गले के नीचे उतरते ही अपना बिजली का असर दिखाएगी।

लंबोदर—(गोली लेकर पानी से निगलता है। दवा कड़वी होने के कारण मुंह बनाता है) उफ्फ! आप तो कहते थे बड़ी जायकेदार है! यह तो बड़ी कड़वी है।

वैद्यजी—उपदेश और दवा कड़वी होने पर भी निगलने योग्य होते हैं। देखिए अभी आपकी पीड़ा उन्नीस होती है।

लंबोदर—हूं हूं! (दर्द से चिल्लाता है) मरा! मरा! वैद्यजी यह तो इक्कीस होने लगी। क्या खिला दिया आपने? जमालगोटा तो नहीं?

वैद्यजी—सेठजी एकदम घबरा जाते हैं आप तो बच्चों की तरह। बीमारी आपको कुछ नहीं है। (नब्ज हाथ में लेकर) सब निकल गई। खराब खून जो था वह बह गया सिर्फ कमजोरी बाकी है। यह भी अभी छूमन्तर होती है।

लंबोदर—कमजोरी कहाँ? अभी तो दर्द ही हो रहा है।

वैद्यजी—यह मामूली गोली नहीं है। नाक के रास्ते खाई जाय तो कंधे के ऊपर के तमाम रोगों का नाश कर दे और अगर मुंह के मार्ग से निगली जाय

तो कपड़े के नीचे की तमाम बीमारियाँ रफा ! अभी आपको भूख लगती नहीं जोर की । (मालिनी से) आइए आप तब तक काढ़ा बनाइए ।

संतोखर—नहीं नहीं मालिनी नहीं न जाना । मेरी तबीयत घबरा रही है ।

वैद्यजी—अजी सेठजी यह मामूली गोली नहीं है । तोप न भर दी जाय तो लंका को फूंक दे । अभी ठीक हो जायेंगे आप । चार गोली और दे जाता हूँ । घंटे घंटे भर में पहली शहद के साथ दूसरी दही के तीसरी दूध के और चौथी घी के साथ खाइए । मैं बराबर खबर लेते रहूँ । एक दूसरे बीमार को देखने जाना है अभी इसी से जल्दी है । (मालिनी को गोलियाँ दे चरन बगल में दबाकर जाना) ।

फागुन—मामला गड़बड़ देखकर ये तो खिसक गए ।

संतोखर—(फिर हाथ-पैर पटकता है) अरे मैया रे । मरा रे ! अरे फागुन किसी और को बुला रे !

फागुन—किसे बुलाऊँ ?

संतोखर—किसी अच्छे को बुला जिसके साथ अपना मन मिलता हो ।

[फागुन का जाना । पोथी-पत्रा बगल में दबाए ज्योतिषीजी का आना]

ज्योतिषीजी—जय हो ! जीते रहो जजमान ! (सेठजी को देख चौंकते हुए) है ! यह क्या ? आपका चेहरा तो शाम भर में बीमार का सा हो गया । क्या हुआ ? कल ही तो आपको भला-चंगा देखा था मैं ।

संतोखर—कर्म का फल ज्योतिषीजी । अरे मरा रे ! बड़ा कष्ट है ।

मालिनी—कुछ पोथी पत्रा खोलिए, ग्रह-नक्षत्रों को विचारिए, इन्हें कौन-सा शनीचर लग गया ?

ज्योतिषीजी—दूसरा बालक की बात नहीं है सेठानी जी । मैंने पिछले बृहस्पत पर सेठजी से कहा था कि पंच परमेश्वर सप्त भाग्य और नव रत्नों की एक पूजा करा, बृहस्पती हुई राशि से उबार दो अपने शरीर को । न जाने क्या समझे थे । मैंने दुबारा फिर नहीं कहा इनसे । मुझे तुम्हारे पैसे का लोभ नहीं । (बैठकर पोथी-पत्रा खोल गणित से कुछ लिखता है) ।

लंबोदर—(रोने के स्वर में) ज्योतिषीजी आप तो समझते हैं, न-जाने कैसी माया इसके घर में छिपी पड़ी है। नवरत्न कहाँ से लाता मैं ?

ज्योतिषीजी—ग्रहों को हाथ जोड़ पत्ते बना देते नवरत्नों की जगह एक-एक पैसा रख देते।

लंबोदर—ऐसा हो सकता है क्या ?

ज्योतिषीजी—आदमी के कर सकने पर क्या नहीं हो सकता ?

लंबोदर—तो अबके सूरज-ग्रहण पर सब कुछ करूँगा—लेकिन अगला सूरज ग्रहण कब होगा ? वह नसीब में है भी या नहीं ? (छटपटाता है) अरे मार डाला रे !

मालिनी—ज्योतिषीजी जल्दी बताइए कुछ।

ज्योतिषीजी—(अँगुलियों पर जल्दी-जल्दी गिनता है कमरे में दौड़ते हुए) मीन मेष मिथुन कर्क का सूरज और सेठजी की जन्मराशि आठ गुणे चार दूनी आठ चार उसके ठीक है हासिल होगा एक। इतवार सोमवार, मंगल—मंगल की वक्र दृष्टि तिरछी नजर है आपके ऊपर !

लंबोदर—मैंने क्या बिगाड़ा है उनका ? जो इतना खून ?

ज्योतिषीजी—सब वक्त की बात है। खून न बहेगा तो और क्या होगा ? मंगल का रंग लाल है वे लाल चीज ही पसन्द करते हैं।

लंबोदर—मरा रे ! मरा रे !

मालिनी—क्या करें फिर ?

ज्योतिषीजी—उनकी पूजा कर उन्हें प्रसन्न करो। किसी शुद्ध आचरण के ब्राह्मण से मंगल का सवा लाख जप कराओ। पूजा में लाल ही लाल चीजें रखो और दक्षिणा में लाल ही लाल दो। (पोथी-पत्रा समेट लेता है)।

लंबोदर—लाल किसके घर से लाऊँ ?

ज्योतिषीजी—सेठजी जरा सी रोली लगा देना रुपए या नोट में।

मालिनी—लेकिन आपसे अच्छा ब्राह्मण हमें और कौन मिलेगा ?

ज्योतिषीजी—मैं किसके घर स फुरसत लाऊँ ? लाट साहब की जन्म-कुंडली आई है उनके लिए शेर के शिकार को जाने का मुहूर्त ढूँढना है। वह

तो मैं इतनी देर तक तुम्हारी दुकान बन्द देख मारे फ़िक्र के इधर चला आया।

मालिनी—(हाथ जोड़ती है) हमारी लाज तुम्हारे हाथ है महाराज ! हम पर दया करो।

संतोखर—जो वहाँ नहीं लाभ दिखाता दूँगा इस मगल की मरे घर से निकाल दो महाराज।

ज्योतिषीजी—अच्छी बात है। मैं किसी को मत दूँगा। (जाने लगता है)।

संतोखर—अरे दो-चार पैसे बचाने के तो द।

मालिनी—सुपारी तो कटी है।

संतोखर—जरा ज्यादे-ज्यादे दे दे।

मालिनी—(चारपाई के नीचे पानदान में से कुछ सुपारी और चार पैसे ज्योतिषीजी को देती है) यह लीजिए बरन।

[ज्योतिषीजी पैसे लेकर जाते हैं। जामुन घरों तक लटकता हुआ ढीले मैं का जामा पहन सिर पर बोरनिया टोपी पहन एक हकीमजी को बाहर ले आता है।]

जामुन—(बाहर को) अगटके चले आइए हकीम साहब।

[मालिनी घूँघट काढ़ एक तरफ को हो जाती है]

संतोखर—अब जीम पाएन आई ? (हकीमजी आते हैं) मरता हूँ हकीम साहब बचा दीजिए। पेट में दर्द है मन गिरा।

हकीमजी—नब्ज दिखाइए। (नब्ज देखता है) हरारत तो बहुत है नहीं। जीभ बाहर निकालो। (संतोखर जीभ बाहर निकालता है) हूँ ! कोई सख्त गरिष्ठ चीज तो नहीं खा ली थी ?

संतोखर—(रोते हुए) नहीं हकीमजी।

हकीमजी—दुकान में कोई भारी बोझ तो नहीं उठाया था ?

संतोखर—बोझ ? (कुछ याद कर) हाँ उठाया था। यह तो धंधा ही ठहरा। कभी मीटर काम रहता है कभी नहीं।

हकीमजी—किस चीज का बोझ था ?

संतोखर—नमक की बोरी।

हकीमजी—सेठजी यही बात है। रुई की बोरी होती तो कुछ न होता। यह नमकहरामी उसी ने की। जब आपने बोरी खिसकाई तब सारा बोझ नसों के जरिए आपके दिल पर पड़ा वहीं पर कोई खून की नाली टूट गई। इस बीमारी का नाम खिरोकुमखिसोर है। सिकन्दर जब ईरान को फतह कर हिन्दुस्तान में आया तब उसे रास्ते में यही बीमारी हो गई थी। जिनकी पुड़िया ने उन्हें अच्छा कर दिया था उन्हीं की औलाद होने का इस नाचीज को फख्र क्यों न हो?

लंबोदर—किसा तो हकीम साहब वही पुड़िया मुझे भी बख्श दो।

हकीमजी—अजी पुड़िया क्या बिलकुल अकसीर है। मरे को जिला दे। आपके तो अभी सभी अलामत सही और दुरुस्त हैं।

लंबोदर—जब तक जिऊँगा आपका ऋणी रहूँगा।

हकीमजी—जानते हो नुस्खा किसका था?

लंबोदर—किसका भी हो हकीम साहब मुझे तो इस दर्द से छुटकारा पाने से मतलब है।

हकीमजी—खास लुकमान हकीम का! भूल से बचाने में वह धोबी के यहाँ चला गया। बाकी मेरे बुजुर्गों में से किसी को दे गया। वही अब मेरे पास है। मेरे घर चलें तो मैं दिखा सकता हूँ।

लंबोदर—अब मरने की भी ताकत नहीं। पुड़िया निकालिए।

हकीमजी—उसे जेब में रखकर बीमारों को देखने जाता हूँ। सौ बीमारियों की एक दवा है। लो ये चार पुड़ियाँ हैं। दो दो घंटे में एक-एक फाँक लेना। एक अभी लो। (पुड़िया देता है। लंबोदर एक उसी वक्त फाँक लेता है) एक और मरीज को देखने जाता हूँ। कुछ देर में फिर आऊँगा। (जाता है)।

मालिनी—(घूंघट दूर कर लंबोदर के पास आकर) क्यों कुछ असर दिखाया दवा ने?

लंबोदर—क्या बताऊँ? यह तो बढ़ता ही जा रहा है।

मालिनी—क्या करूँ फिर?

फागुन—डॉक्टर साहब को बुला लाऊँ?

लंबोदर—एक दूसरे डॉक्टर साहब हैं उनकी बोली बहुत छोटी है और

दिल की धड़कन नहीं है। वो पहला धक्का सा लगा था। यहीं नज़दीक ही तो हैं वे।

मालिनी—और उन डॉक्टर साहब को भी बुला लाना।

मधुप—दोनों को लीजिए, जान है तो जहान है। (जाता है)।

मालिनी—क्या तबीयत कैसी है ?

मनोहर—बस यही एक सवाल पूछ रही हो तुम ?

मालिनी—तुम भी तो दूसरा जवाब नहीं दे रहे हो।

मनोहर—क्या कहूँ मालिनी ?

मालिनी—हकीम साहब की दवा से कुछ फायदा हुआ ?

मनोहर—हूँ हूँ ! नहीं ! बिलकुल नहीं ! ज़रा भी नहीं !

मालिनी—घंटे भर में दूसरी पुड़िया खा लेने पर ज़रूर फायदा होगा।

मनोहर—अरे मरा रे ! घंटे भर तक दूसरी पुड़िया फाँकने के लिए कैसे ज़िंदा रहूँगा ?

[बाहर कोई द्वार खटखटाता है]

प्राकृतिक चिकित्सक—(बाहर से) सेठजी ! सेठजी !

मनोहर—आ जाइए।

प्राकृतिक चिकित्सक—(आकर) आप ही हैं क्या बीमार ? क्या हो गया ?

मनोहर—हाँ बीमार तो फ़िलहाल मैं ही हूँ लेकिन क्या आप डॉक्टर हैं ?

प्राकृतिक चिकित्सक—हाँ आपका नौकर बुलाने आया था।

मनोहर—लेकिन मुझे शक होता है। आप कैसे डॉक्टर हैं ? आपके गले की नली नहीं है थर्मामीटर नहीं है और कहाँ है दवाओं का बक्स ?

प्राकृतिक चिकित्सक—ये सब बाहरी तड़क भड़क दिखावे और इश्तहार है। मैं असलियत पर ज़ोर देता हूँ। मैं नेचुरोपैथ हूँ—प्राकृतिक चिकित्सक। दवाओं को बीमारियों को गंवार समझता हूँ।

मनोहर—फिर कैसे अच्छा करते हैं आप बीमार को ?

प्राकृतिक चिकित्सक—प्रकृति के विधान से—मिट्टी पानी हवा रोशनी धूप और किरणों से।

मनोहर—बहुत अच्छा ! (मालिनी से) मालिनी ज़रा इनके बैठने के लिए

छोड़िए। भीतर की साँस में यह भावना भरिए कि आप अनंत के अमृत-भंडार में से अमृत का शोषण कर रहे हैं। और बाहर की साँस में निकाल डालिए अपने शरीर का तमाम जहर और मन का सारा पाप!

लंबोदर—ऐसा ही करूँगा। मालिनी तुम याद दिलाती जाना अगर भूल जाऊँ तो।

प्राकृतिक चिकित्सक—नमस्ते। (जाता है)।

मालिनी—अब कैसी तबीयत है?

लंबोदर—(हाथ-पैर पटकते हुए) मर गया! रे मैया! मर गया! तुमने तो अभी याद दिला दी। ओ बाप रे!

[मालिनी डॉक्टर को आते देख घूँघट काढ़ लेती है]

डॉक्टर—(आते हुए) वेल सेठ, क्या बात है? बीमार हो गया?

[फागुन डॉक्टर का बैग सिर पर लादे आता है और स्टूल पर रख देता है।]

लंबोदर—हाँ हुजूर गर्दिश में फँसा हूँ।

डॉक्टर—हम अभी टुमारा गर्दिश को भगा डेगा। मुँह खोलो। (लंबोदर मुँह खोलता है। डॉक्टर घड़ी देखते हुए उसके मुँह में थर्मामीटर लगाता है। पेट को हाथ से दबाता है) यह टो पक्का मालूम देता है।

लंबोदर—(मुँह में थर्मामीटर रखे सिर हिलाता है) हूँ! हूँ!

डॉक्टर—(फागुन से) टुम बटाओ।

फागुन—(अपना भी देखकर) हाँ हुजूर, इस वक्त तो यह बहुत फूल गया।

लंबोदर—(मालिनी की तरफ इशारा करता है) ऊँ ऽ!

मालिनी—(हाथ के इशारे से नहीं बताती है)।

[डॉक्टर उसके मुँह से थर्मामीटर निकालकर उसे जाँचता है]

लंबोदर—नहीं हुजूर, फूला नहीं है बाँध रखा है।

डॉक्टर—क्या बाँध रखा है?

लंबोदर—मिट्टी।

डॉक्टर—हा! हा! हा! मिट्टी बाँध कर क्या होगा? टो फिर हमको

संबोधर—जैसी आपकी मर्जी हो।

डॉक्टर—(उसको बिठाकर चाकू से उसकी बाँह पकड़कर इन्जेक्शन देता है) देखो अगर तबीयत ठीक नहीं हुई तो हमें फौरन खबर देना। अफ्वाह करोगे तो जान का खतरा है। यह बड़ी बीमारी है, इसमें आटा या मिट्टी के प्लास्टर बाँध देने से काम नहीं चलेगा।

संबोधर—नहीं डाक्टर साहब यह चाकू मालूम नहीं किसको सूझा आया। अब से ऐसा काम हरगिज नहीं होगा आप खातिरजमा रखिए।

डॉक्टर—अच्छी बात है अब हम जाता है। (बेग बन्द कर उसे उठा चला जाता है)।

मालिनी—(घूँघट खोल खुश हो संबोधर के पास आती है) भगवान् की धन्यवाद है बड़े भाग से मिले डॉक्टर साहब।

चम्पुन—जिनके दर्शन से ही बीमारी पर जमाकर उड़ गई।

संबोधर—अरे कहाँ भागी? यह तो और भी चिपक गई। उसने तो और भी पैर फैला दिए। (फिर पैर छटपटाता है) मरता हूँ अब जरूर मरता हूँ और बुलाओ रे किसी अच्छे को बुलाओ।

मालिनी—तुमने तो अभी-अभी डॉक्टर से कहा था कि तबीयत बिलकुल ठीक हो गई।

संबोधर—और क्या करता फिर? उसने भी तो छुरी-कैंची निकाल ली थी। (कराहता है) हाय रे! अम्मा री! बब्बा रे! कहाँ हो?

[ओझाजी आते हैं]

ओझाजी—क्यों सेठजी क्या हो। अभी सुना मैंने बीमार पड़ गए कब से?

संबोधर—अभी आज ही अभी। शहर के सभी वैद्य डॉक्टर, हकीम इलाज कर हार गए।

ओझाजी—उन्हें आता ही क्या है सिर्फ पैसा खसोटना जानते हैं। क्या शिकायत है?

संबोधर—क्या कहूँ आपसे? कहते-कहते हार गया। और फिर कहने भी तो कुछ नहीं हुआ। आप अपनी अक्ल से ही काम लीजिए।

ओझाजी—आँखों में तो कुछ दूसरा ही रंग झलक रहा है।

मालिनी—ओझाजी इनके प्राण बचा लो। क्या करूँ कुछ समझ नहीं पड़ता। यहीं धम गिर गया।

ओझाजी—(सेठजी की नब्ज़ देखकर) अभी यह रोग होता तो दवा के बस का होता। यह तो एक भूत या जादू इन तीनों में से एक है। सेठजी आप डरे तो नहीं थे कभी?

मनोहर—हर वक्त डरता ही रहता है भगवान् से।

ओझाजी—भगवान् की बात नहीं करता। (फागुन से) जा एक झाड़ू तो ले आ। मैं अभी इसे भगा दूँगा।

[फागुन जाता है]

मालिनी—हाँ ओझाजी बीमारी होती तो सिर-दर्द होता बुखार होता। बिस्तर से उठे नहीं कि धम्म पड़ गए।

[फागुन झाड़ू लेकर आता है]

ओझाजी—(फागुन के हाथ से झाड़ू लेकर सिर से पैर तक सेठजी को झाड़ते हुए) नमो त्रिपुरनाशकारी शिवजी महादेव जी के पुत्र और शेषनाग। पढ़ विष्णुजी शंख बजावें कमलासन में ब्रह्मा सृष्टि रचावें वेद पढ़ावें। भूत प्रेत भाग जाव। गुरुजी की दुहाई हनुमानजी की दुहाई भूत प्रेत की मार पछाड़ी। ओं नम (झाड़ू को जमीन पर पटकता है) ओं फ। (झाड़ू में फूँक मारकर एक कोने में फेंक देता है।) ओं फट्! (हाथ में फूँक मारकर ताली बजाता है) ओं हरा ऽऽ हा ऽऽ! (सेठजी के माथे पर तीन बार हाथ घुमाता है) क्या सेठजी धरम की साखी पर सच बोलना पड़ेगा। आपकी बीमारी यह या नहीं?

मनोहर—ओझाजी, अभी तो—

ओझाजी—क्या-क्या?

मनोहर—(रोते हुए) ओझाजी—

ओझाजी—जी हाँ?

मनोहर—(उसी तरह) ओझाजी—

ओझाजी—दिन भर ? साल-भर ? ठहरिए, अभी भगाता हूँ इसे। यह आसानी से नहीं जाएगा। (फागुन से) जा रे, एक लोटे में पानी ला। (फागुन जाता है। मालिनी से) सात दाने साबुत उड़द के ला दो। (मालिनी का जाना) बस अब थोड़ी देर में मैं भगा दूँगा इसे सेठजी यह जो भी है। (लंबोदर की आँख बचाकर जेब से एक रंग की पुड़िया निकालकर हथेली में छिपाता है) सेठजी आप जरा सीधे होकर बैठ जाइए। तकलीफ तो होगी ही थोड़ी देर! (फागुन लोटा लाकर उसे देता है। ओझा उसमें रंग की पुड़िया मिला देता है। मालिनी लाकर उड़द के दाने देती है। वह लंबोदर के सिर के चारों तरफ उस लोटे को घुमाता है) भूत प्रेत परी पिशाच यक्ष गंधर्व राक्षस किन्नर, बेताल—आकाश पाताल—पानी-पर्वत मसान आग सब का शासन तोड़े जो भी है अपने घर जावे—श्री गुरुजी महाराज का महा वचन बजरंग बली की आन! ओं फिरड़ फाँ फू फों फट्! (लोटे को एक हाथ में पकड़ दूसरे हाथ से चारों तरफ उड़द के दाने मारता है। फिर जमीन पर लोटे से पानी की धार गिराता है)।

लंबोदर—है! इस पानी का रंग लाल कैसे हो गया? (फिर कराहता हुआ लेट जाता है)।

फागुन—मैं तो बिलकुल साफ पानी लाया था। आपने कुछ मिला तो नहीं दिया?

ओझाजी—मैंने मंतर की ताकत से आपकी सारी बीमारी इस लोटे में खींच ली इसी से पानी लाल हो गया।

मालिनी—नहीं जी, इस लोटे में मैंने रात को गुलेनार रंग भिगोने के लिए—

फागुन—हूँ हूँ वह लोटा तो वहीं रखा है।

लंबोदर—(कुछ याद कर उठ बैठता है) कहाँ रखा है?

फागुन—गुसलखाने में। (दौड़कर लोटा लेने जाता है)।

ओझाजी—क्यों सेठजी अब कहिए तबीयत कैसी है?

लंबोदर—लोटा तो देख लेने दीजिए, तबीयत भी अभी ठीक हुई जाती है।

[कम्बल छोड़कर चारपाई पर खड़ा हो जाता है]

फागुन—(लोटा लेकर आता है) ये है जी लोटा।

मालिनी—(दुःख के साथ) मगर इसमें का पानी सब-का-सब किसी ने गेर दिया।

लंबोदर—(खाट से उछलकर जमीन पर कूदता है और हाथ फैलाकर बीमारी का दूर हो जाना प्रकट करता है) अरी ज्वर जा ? तो मत उगना ही लोटा तोल दूंगा—मेरी बीमारी चली गई।

मालिनी—परमेश्वर को धन्यवाद है आप अच्छे हो गए। और क्या चाहिए मुझे ?

ओझाजी—क्यों सेठजी ? कैसा झाड़ा ? कर दिया न चुटकियों में अच्छा ? है न मेरे लोटे में करामात ?

लंबोदर—करामात इस झाड़े में नहीं इस लोटे में थी ओझाजी। (फागुन के हाथ से लोटा ले लेता है) इसी की बदौलत मैं बीमार हुआ और इसी ने मुझे अच्छा कर दिया। (मालिनी से) जाओ जल्दी से खाना तैयार करो। मेरे पेट में चूहे कूद रहे हैं और फिर अभी तक दुकान नहीं खोली सैकड़ों ग्राहक लौट गए होंगे।

[मालिनी बीच के द्वार से भीतर जाती है। फागुन भी ओझा और लंबोदर के हाथ से लोटा लेकर मालिनी के पीछे जाता है।]

ओझाजी—ब्राह्मण की दक्षिणा उधार खाते में मत रखिए सेठजी।

लंबोदर—हैं! हैं! हैं! आप शाम को आइए। (ओझा को रास्ता दिखाता है। उधर से डाक्टर आता है)।

डॉक्टर—डियर आदमी बिना ऑपरेशन के ही अच्छा कर दिया। लो ये है दवा के दाम और फीस दोनों का टोटल। (जेब से बिल निकालकर लंबोदर के आगे बढ़ाता है)।

[लंबोदर दूसरी तरफ भागता है उधर से हकीम हाथ मलते आता है]

हकीम—बंदे हो गए एक ही पुड़िया में बिस्तर छोड़ जमीन पर कूदने लगे! लाइए अब हमारा मेहनताना दीजिए।

लंबोदर—(तीसरी तरफ भागता है) बाप रे ! (उधर से ज्योतिषीजी आते हैं)।

ज्योतिषीजी—(पत्र-पत्री देते हुए) लीजिए, यह वाचिए आप अच्छे हो गए होंगे यह तो मैंने मंदिर में जप करते ही जान लिया था। लाइए दक्षिणा।

लंबोदर—मरा रे ! (फिर दूसरी तरफ भागता है। प्राकृतिक चिकित्सक आता है)।

प्राकृतिक चिकित्सक—क्यों सेठजी अब मालूम हुए न आपको मिट्टी के गुण। मैं कोई फीस तो नहीं माँगता आपसे जो मन भावे वह दीजिए, देना ही चाहिए।

लंबोदर—अब किधर जाऊँ ? (फिर दूसरी तरफ दौड़ता है उधर से वैद्यजी आकर सेठ का हाथ पकड़ते हैं)।

वैद्यजी—ठीक हो गए सेठजी ! मैं समझता हूँ यह एक ही गोली का प्रताप है। अभी दूसरी का लोगे तो काया-कल्प हो जायगा काया-कल्प ! अब हमारी पूजा में कोर-कसर न हो।

लंबोदर—हा ! हा ! हा ! हा ! अरे कैसी पूजा और कैसी दक्षिणा ? कैसी फीस और कैसा मेहनताना ? कैसा बिल और कैसा चीचक ? यह गरीब लंबोदर कभी बीमार ही नहीं हुआ।

सब—(हाथ उठाकर चिल्लाते हैं) कौन कहता है ? झूठी बात !

लंबोदर—सुनिए मैं कहता हूँ अभी सब बताता हूँ। यह तो बात ऐसी हुई कि रात को मेरी श्रीमती ने जिस कोने में नमक घोल दिया था सुबह मैं उसे घोल को उठा ले गया वहाँ जब मैंने नमक को जमीन पर बहता पाया तो धुँधली रोशनी में मैंने उसे अपना खून समझा और मैं बीमार पड़ गया। अब आप लोग ही बताइए फिर मैं क्यों न अच्छा हो जाता ? लेकिन मेरी नीयत साफ है मैं बेईमान नहीं हूँ। पूजा—मैं आप सबों की पूजा दक्षिणा मेहनताना बिल कीमत दाम जो भी आप कह रहे हैं सब कुछ दूँगा। अभी जरा मजबूरी है मुझे बड़ी जोर की भूख लगी है। आप अपने अपने घर पधारें। मैं अपने नौकर की मार्फत सबके पास भिजवा दूँगा। (सबको धकेलकर मध्य में बने बीच के रास्ते से भीतर चला जाता है)।

फागुन—(भीतर से) सेठजी रोटी तैयार है।

[पर्दा गिरता है]

पात्र

होलैंडर
सरकस का मालिक

मंसूर
सरकस का एक सिपाही

मैना
होलैंडर की पत्नी

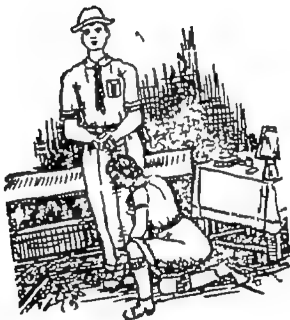
हफ़ाम बनी
सरकस के दो पहलवान

दीपन का राजकुमार
एक लड़का

—

देश—होलैंडर सरकस का प्रांगण
काल—एक रात

अपराध मेरा ही



" पत्थर की शपथ लगाकर बिना पक्ष लिए तुम्हारा साथ दूँगी।"

पहला दृश्य

[स्थान—होलॅकर सरकस के कम्पाउण्ड में सोफर के तम्बू के भीतर। समय—नौ बजे रात। तम्बू के एक तरफ़ दो कम्प कॉट बिछी हुई हैं। एक ओर एक छोटी-सी मेज़ लगी है उस पर रूपए और शृङ्गार का सामान रखा हुआ है। एक किताब, दवात-कलम और चाँदी का एक-दो कार्ड लिफ़ाफ़े और एक टेलीफ़ोन रिसीवर भी उसी पर है। कोने में बिजली का लैम्प-स्टैण्ड। फ़र्श पर तीन फोल्डिंग कुर्सियाँ हैं। नेपथ्य में सरकस के फाटक पर बजते हुए बैंड की ध्वनि और एकत्र होते हुए दर्शकों का शोर। कभी-कभी शेर और दूसरे जानवरों की आवाज़ें भी सुनाई दे रही हैं। लैम्प की सहायता से कुर्सी में बैठी नैना अपने जूड़े में फूल सजा रही है। ओवरकोट और हैट पहने, सिगार पीता हुआ रौशन का राजकुमार तम्बू के भीतर आ जाता है। नैना उसकी तरफ़ देखते ही जानी थी कि वह हैट उतार उसकी ओर हाथ बढ़ाता है।]

रौशन-कुमार—नैना! गुड नाइट!

नैना—(चौंक कर उठ जाती है। एक अपरिचित को देख सहमकर खड़ी हो जाती है)।

रौशन-कुमार—हाथ क्यों नहीं बढ़ाती? हम एक-दूसरे से मिल चुके हैं। हमारे परिचय के लिये किसी तीसरे की ज़रूरत अब नहीं रही।

नैना—(हाथ जोड़कर) नमस्ते! मैं आपको पहचान नहीं पाती हूँ।

रौशन-कुमार—अपनी अपनी आदत । लेकिन हाथ मिलाने से हम एक-दूसरे के बहुत नज़दीक आ जाते हैं। हमारी दोस्ती हमारे सामाजिक जीवन के नाते यह बहुत ज़रूरी चीज़ है। दुनिया भर में सबसे प्यारा यही तरीका इस्तेमाल होता है। और इसलिये नाम तो नाक से नाक रगड़ते हैं—सुनना पड़ा होगा

नैना—(चकित और चुप रह जाती है)।

लेखा—पहले कपड़े की डमी रखकर उन्होंने अभ्यास किया था। मैं उस डमी का रोज देखती रहती। जब उनके हाथ से फेंका हुआ प्रत्येक छुरा डमी से बाल-बाल बचा रह जाता तो मेरे विश्वास बढ़ गया और एक दिन मैं निर्भय होकर बोर्ड के पास खड़ी हो गई।

दीपक-कुमार—विश्वास किसके ऊपर बढ़ा? अपने ऊपर या उनके?

लेखा—उन्हीं के ऊपर।

दीपक-कुमार—ताज्जुब है। हो भी सकता है। तुम्हारा-मेरा तो परिचय है। तुमने अपने इसबन्ड की तारीफ़ की है। मैं उनसे दोस्ती करना चाहता हूँ। किसी बहाने से कभी उनके साथ मेरा हाथ मिला दो न। या उन्हें भी नमस्ते करने की ही आदत है?

लेखा—वे बहुत कम नई मित्रता पालते हैं।

दीपक-कुमार—खूब! तुम इतनी कोमल और वे बहुत कम नई मित्रता पालते हैं। मैं उनके हाथ के निशाने का कायल हूँ। सोचता हूँ अगर वे किसी दिन उन छुरा को लेकर हमारे साथ के जंगल में चलते तो ज़रूर दो-तीन भालुओं को धरती पर लम्बा कर देते। उनके-तुम्हारे और भालुओं के साथ फोटो खिंचाने का एक बहाना मुझे भी मिल जाता।

लेखा—लेकिन उनका निशाना कहाँ है सही? दरअसल मैं वे रोज रात को मेरे ऊपर छुरे फेंकते हैं पर आज तक कभी मेरे अंग के किसी तिल का भी स्पर्श नहीं कर सके हैं। यही क्या उनके निशाने का पक्का होना है?

दीपक-कुमार—हाँ-हाँ यही तो है। यह मेरे अपने समझने की बात है तुम्हारे समझने की नहीं। मैं उनसे अभी बात करूँगा कहाँ हैं वे?

लेखा—सरकस के मालिक मिस्टर हार्मेकर के साथ कोई ज़रूरी मशविरा कर रहे हैं उन्हीं के आफिस में।

दीपक-कुमार—दिन में फ़ुरसत रहती होगी? किस वक्त?

लेखा—दो-तीन बजे आइए। (उठ जाती है) अब तो मुझे—

दीपक-कुमार—मैं समझ गया। (उठ जाता है) ज़रा बाहर तक पहुँचा देने की तकलीफ़ तो कर दो। भालुओं के पछाड़ने की उतनी परवा नहीं है मुझे।

लेकिन तम्बू के बाहर जो कुत्ता बाँध रखा है तुमने वह शायद सब भाग जाता है। क्यों उसी के साथ मेरी दोस्ती करा दो आज।

लेखा—काटता नहीं है वह सिर्फ भौंककर डरा देता है।

दीपक-कुमार—नहीं मैं ऐसी पौराणिक बातों पर विश्वास नहीं करता। तुम्हारे पति-देव के पूरे भिक्षु न सही हैं तभी काटते नहीं—उसकी जड़ में उनकी मुहब्बत है। तुम्हारा यह गोश्तखोर कुत्ता मैं इसके भौंकने और काटने के बीच में कोई फर्क नहीं देखता।

[बहन लेखा उसके पीछे-पीछे दीपक-कुमार का जाना। उनके जाने के कुछ देर बाद एक लिफाफा हाथ में लिए हुए धीरे-धीरे सन्जित शंकर आता है। कुछ याद आते ही वह बड़ी होशियारी से लिफाफे को खोलकर पढ़ता है, फिर जल्दी से इधर उधर देखकर गोंद लगाके से लिफाफा को वैसे ही चिपका देता है। लेखा आती है।]

लेखा—कब आए तुम?

शंकर—कहाँ गई थी?

लेखा—यहीं पर थी।

शंकर—लो यह तुम्हारा एक पत्र आया है। (कुर्सी में बैठ जाता है)।

लेखा—कहाँ से? (पत्र लेती है)।

शंकर—मैं क्या जानूँ? तुम्हें ही मालूम होगा।

लेखा—(पत्र खोलकर पढ़ने लगती है। पढ़ते-पढ़ते शंकित होकर शंकर की तरफ देखने लगती है और धीरे से एक कदम पीछे हट पत्र को कुछ छिपा कर पढ़ने लगती है। पत्र समाप्त कर सावधानी से अपने बटुए में रख बटुआ हाथ में ले लेती है)।

शंकर—किस का पत्र है? (मेज को उँगलियों से बजाते हुए उसके उत्तर को देरी में ताल देने लगता है। जब लेखा चुप ही रह जाती है तो फिर पूछता है) क्या लिखा है?

लेखा—किसी का नहीं।

शंकर—यह बहुत साफ है। होने से ही किसी का होगा और तुम कहती

जो किसी का नहीं है। ताज्जुब है सेवा!

सेवा—अगर यह गुमनाम हुआ तो फिर किसका बता दूँ?

शंकर—फिर भी क्या एक अनुमान तुम्हारे पास नहीं? देखूँ तो।

सेवा—नहीं रहने दो।

शंकर—रहने दूँ? (मुट्ठी बाँधकर मेज पर मारता है) ओऽऽफ़! अपना घर-द्वार मुल्क और बोली छोड़कर इस होमेजर सरकस में नौकरी की। सोचा था नए नए देश और नए लोगों से भेंट होगी। नया ज्ञान और नया तजरबा हासिल होगा   और अपने ही घर के भीतर ऐसा तजरबा मिला! (निराशा की साँस ले कर सिगरेट सुलगाता है)।

सेवा—तुम झूठे ही न-जाने क्या शक करने लगे?

शंकर—देखो सेवा मैंने हमेशा तुम्हारे साथ सच्चा व्यवहार किया है तुम्हें भी मुझसे—

सेवा—तो क्या मैं तुमसे झूठ बोला करती हूँ?

शंकर—लेकिन कुछ छिपाती जरूर हो। छिपाना क्या झूठ की ही एक शकल नहीं है?

सेवा—क्या छिपाया मैंने?

शंकर—इसी पत्र को देख लो यह एक बिलकुल ताजी मिसाल है।

सेवा—यह पत्र?—इस पर खोल जाने के निशान मौजूद हैं तुमने पढ़कर इसे पढ़ लिया है।

शंकर—जब ऐसा ही है तो तुम्हारा इसे छिपाना बेकार है।

सेवा—(फौरन ही ब्लाउज़ से पत्र निकालकर हाथ में ले लेती है) तुमने मेरे मना करने पर भी मुझे सरकस की ऐसी नौकरी के लिए अभ्यास कराया और मुझे ऐसी जगह, कम से-कम कपड़ों में खड़ा कर दिया—जहाँ हर रात को हजारों बुरी भली नजरें मेरे ऊपर पड़ती हैं। उनमें से दो-चार कम बुद्धि के लोग अगर मेरे लिए पत्र भेज देते हैं तो उन्हें क्षमा किया जा सकता है। मैंने क्या किसी को उत्तर दिया है? उत्तर भी दिया हो तो बिना उसे पढ़े तुम्हारा मुझसे कुछ कहना न्याय है क्या?

शंकर—कम्पनी का वह काला क्लार्क—रूप से वह जितना काला बाहर है उससे कई गुना भीतर भी है। मुझे उसकी परछाईं से भी नफरत है। लेकिन उसमें क्या मनोज है। एक ही चन्द-बक्स में से हम दोनों को तनखा मिलती है और एक ही तवे पर दोनों की रोटियाँ भी सिकती हैं। उसने न-जाने तुम्हारे ऊपर क्या जादू डाला है ?

लैला—उसके नाम की इस समय क्या आवश्यकता थी ? लो यही है वह पत्र। (उसे पत्र दे देती है)।

शंकर—(पत्र खोलते हुए) तुम उसके साथ घूमने क्यों जाती हो ?

लैला—तुमसे छिपाकर कब गई ?

शंकर—(जोर-जोर से पत्र पढ़ता है) "प्यारी लैला"—हैं ! यह तो प्रेम पत्र है। किसका है ? उसी का है।

लैला—तुम उसके हस्ताक्षर नहीं पहचानते क्या ?

शंकर—(फिर पत्र पढ़ता है) "प्यारी लैला तुम्हारे पति के दिल में तुम्हारे लिए कुछ भी दया-माया नहीं। वह हर रात का तुम्हें बोर्ड के सहारे खड़ा करता है किनकी बेशर्मी से ? फिर दूर से तेज छुरे फेंकता है। अगर कभी उसका या तुम्हारा ध्यान एक क्षण के लिए पल भर भी हट जाय तो वह बीमारी छुरा तुम्हें बदसूरत करता हो एक किनारे की बात तुम्हारी जान लेकर ही चैन लेगा। मैं तुम्हारा भला चाहनेवाला हूँ। इसलिए तुम्हें खबरदार करता हूँ। खबरदार ! खबरदार ! खबरदार ! तुम्हारा पुजारी—क" हूँ ! 'क' कहाँ का मैंने ? क उसी इंसान का नाम का पहला अक्षर है। मुझे धोखा देने के लिए बाएँ हाथ से यह चिट्ठी लिखी गई है। (चिट्ठी फाड़ कर मेज पर फेंक देता है)।

[तम्बू के बाहर का कुत्ता किसी अपरिचित के पास पर जोर से भौंकना शुरू करता है—उसके भौंकने से बाहर एक लड़का चीखता है। शंकर फौरन ही बाहर को दौड़ता है। लैला भी बाहर की खिड़की से खड़ी-खड़ी देखती है।]

शंकर—(बाहर) टिंगर ! हट जा ! (लड़के से) घबराओ नहीं थोड़ा जल ! यही पर खड़े रहो इसे नहीं काला बैठा हुआ है।

लड़का—(बाहर रोते हुए) हैं ! अभी दाँत गड़ा दिया था।

शंकर—(बाहर) किसे ढूढ़ते हो ?

लड़का—(बाहर) भैया जी को। कहाँ रहती हैं वे ? यहीं तो बताया था।

शंकर—(बाहर) यहीं तो है। चले आओ मेरे पीछे। (तम्बू के भीतर आकर) देखा जी लीजिए, एक दूसरे पुजारी की चिट्ठी आई है।

लड़का—(शंकर के पीछे-पीछे आकर) जी नहीं चिट्ठी नहीं है यह चौकोलेट का बक्स भेजा है।

शंकर—(मिला को दिखाकर) यही हैं भैया जी।

लड़का—(दोनों हाथ जोड़कर) नमस्ते मिला जी लीजिए यह आप के लिए भेजा है उन्होंने।

शंकर—किसने भेजा है ? आखिर कुछ नाम भी तो होगा उनका ?

लड़का—जी हाँ नाम तो कुछ भी होगा अलबत्ता मैं नहीं जानता। सब उन्हें दीपक का राजकुमार कहते हैं। नाम से क्या हमें काम से मतलब होना चाहिए। कौन लेगा यह बक्स ? (लता से) आप ही को देने के लिए कहा है उन्होंने। (मिला के सामने मेज पर यह चौकोलेट का बक्स रखकर शंकर से) जरा आप उस बक्स की जंजीर पकड़ लीजिए। (डरते डरते बाहर को जाने लगता है)।

शंकर—किस-किस की जंजीर पकड़ूँ मैं ? यह लोहे की जंजीर में बँधा हुआ है और लड़का तुम भी तो ?—क्या विवाह की प्रतिज्ञा लोहे से कम मज़बूत है ?

लड़का—(घबराकर फिर भीतर लौट आता है) आप तकलीफ़ तो होगी।

शंकर—यह बँधा हुआ है, खोते क्यों नहीं ?

लड़का—जंजीर टूट भी सकती है।

शंकर—(मिला की तरफ देखकर) और तुम्हारी प्रतिज्ञा भी क्यों देखा ?

लता—लड़के !

लड़का—क्या है ?

लता—यह बक्स उन्हें वापस कर देना।

लड़का—क्यों ?

सेना—कारण नहीं बता सकती। यह देना उन्होंने नहीं लिया।

लड़का—नहीं मैं ऐसा नहीं कर सकता। वे मुझ पर नाराज हो जाएँगे। मैं कुल के दोन बर्दाश्त कर लूँगा लेकिन दीपक के राजकुमार का गुस्सा ? बाप रे ! (कान पकड़ता है और कहीं की कोई परवाह न कर चला ही जाता है। बाहर जाता फिर लौटता है)।

शंकर—(एक हाथ पर दूसरे हाथ की कोहनी टेके उस हाथ पर अपनी ठोड़ी रख उसको सहलाता हुआ तम्बू में टहलता है)।

सेना—लेकिन बनाव के दर्शनों में होप से जाओ तुम ले जाकर इस बक्स को उन्हें लौटा दो।

शंकर—वाह ! दोस्ती करने आयो तुम और बुरा बनने के लिए मैं ?

सेना—तुम्हें सब मालूम है मुझे चोकोलेट का स्वाद तक भी पसन्द नहीं है।

शंकर—कुछ भी हो किसी के भेजे हुए उपहार को इस तरह लौटा देना उसका घोर अपमान है। तुम्हें पहले ही बुद्धि से काम लेना था और इतनी दोस्ती नहीं बढ़ानी थी।

सेना—मैंने कहाँ बढ़ाई ?

शंकर—तो क्या कोई अपरिचित इस तरह किसी के लिए मिठाई भेजता है ?

सेना—मैंने कभी उन्हें नहीं देखा अब तक।

शंकर—आज तो देखा होगा।

सेना—मैं कभी उनके यहाँ नहीं गई।

शंकर—वे यहाँ आए होंगे।

सेना—अभी आए थे वे पर मैं कुछ नहीं कहूँगी। आज दिन के परिचित की भाँति वे मेरे साथ बातें करने लगे। मैं क्या धक्का मारकर उन्हें बाहर निकाल देती ?

शंकर—ऐसा कैसे मैं जानती ? यह तुम्हारे पुजारियों की जमात जो दूर रोज मेरे तम्बू की परिक्रमा करते रहते हैं।

सेवा—तुम नाहक ही अपना भ्रम बढ़ाते जा रहे हो ? वे सब तुम्हारे मित्र हैं और तुमने ही उनके साथ मेरा परिचय बढ़ाया है।

शंकर—वह सीमस का राजकुमार ? मैं खूब उन्हें नहीं जानता तुम्हारा परिचय कहाँ से करा दिया ?

सेवा—मैं क्या उत्तर दूँ ? प्रथम दर्शन में हमारे बीच में जो प्रेम था वह बहुत दिन तक बढ़ता गया था।

शंकर—रहने दो रहने दो ये सब पुरानी बातें हैं और पुराने कपड़े की तरह इनकी पायदारी नहीं रही।

सेवा—केवल एक ही दवा है मेरे पास।

शंकर—कौन सी ?

सेवा—मुझे परदे के भीतर बन्द कर रख दो।

शंकर—नहीं यह एक बर्बरता है।

सेवा—सभ्य बनना है तो—दुनिया को भी सभ्य समझो। अगर तुम सभ्य हो तो फिर कौन बुरा है ? परदे से मेरा मतलब एकदम घूँघट या बुरका नहीं है। मैं चाहती हूँ इस तरह क्लोज फिटिंग कपड़ों में मुझे पब्लिक के सामने बोर्ड में खड़ा मत करो।

शंकर—तो फिर गुजर कैसे होगी ? दोहरी तनखा जो मिलती है।

सेवा—मन में प्रेम होगा तो हम प्रसन्न रहेंगे। यह प्रसन्नता दोहरी तनखा से नहीं ठहरती है आधे पेट में जरूर स्थिर हो जायगी। मेरी जगह पर कोई दूसरी स्त्री नियुक्त कर लो।

शंकर—दूसरी स्त्री ? अगर कभी कोई एक्सीडेंट हो गया तो ?

सेवा—(चौंककर) लेकिन मेरे एक्सीडेंट के लिए कभी क्यों तुमने इतनी परवा नहीं की ?

शंकर—तुम्हारे एक्सीडेंट पर न कोई मेरे ऊपर हरजाने का दावा ठोक सकता है न लोग ही मुझे बुरा-भला कह सकते हैं।

सेवा—तब तुम्हारे चरणों पर बलि की बकरी की भाँति पड़ी हुई हूँ मैं ! ऐसी एक विवश अबला से क्यों बिना बात ही घृणा करते हो तुम ? अगर

किसी दिन अपने छूरे की नोक से उसकी एक आँख फोड़ देंगे तो भी वह पत्थर की आँख लगाकर बिना उफ किए तुम्हारा साथ देगी। (शंकर के पैर छूती है)।

शंकर—(बड़े प्रेम से उसका हाथ पकड़कर ऊपर उठाता है) मेला तुम्हारी यह सब कीमत जानता है। मशिन कभी-कभी गुम—(अचानक उसकी उँगली पर एक अँगूठी देखता है और वह फिर अपनी पुरानी की पूर्व भावना में ही लौट जाता है) यह अँगूठी तुम्हें मिस्टर हॉर्कैनर ने भेंट की है।

मेला—क्या तुमसे यह बात छिपी है? तुम्हारे लिए उन्होंने पूरी गई मूट बनवाई तुम्हें पकड़ी थी। यह मेला का पुरस्कार है।

शंकर—नहीं प्रेम की यादगार है। और शंकर को भी कुछ देकर उनकी आँखों में धूल झोंक दी गई है। लेकिन मैं अंधा नहीं हूँ।

मेला—अवश्य नहीं हैं पर जो कुछ पास देख रहे हैं उसमें बुद्धि का यह भार नहीं लेते और उसे भ्रम ही बना रहने देते हैं।

शंकर—जब तुम भीतर कुछ और बाहर कुछ हो तो फिर कैसे मेरा भ्रम दूर हो?

मेला—भीतर क्या हूँ मैं? अवश्य रूप से तुम्हारी ही नहीं हूँ क्या? और बाहर भी क्या तुम्हारे ही संकेतों पर मेरा मार्ग बिछा हुआ नहीं है? समय भी छिपकर नहीं रहता वह अपने-आप तुम जानना किसी-न किसी दिन। मैं साबित कर दूँगी।

शंकर—तुम क्या साबित कर लोगी? तुम किस तरह साबित कर लोगी?

मेला—(बड़ी व्यथापूर्वक कुछ सोचकर) जिस तरह भी कहोगे।

शंकर—जीवन का यह चमत्कार! कितनी जल्दी तुम्हारी उसके साथ इतनी घनिष्ठता हो गई और कैसी चोट में?

मेला—यह एक बात की घनिष्ठता है। (कोमोकेट का डिब्बा उठाकर बाहर को जाने लगती है)।

शंकर—(उसे रोककर) कहाँ जाती हो?

मेला—मेरी कोई घनिष्ठता नहीं है। मैं उसका यह उपहार उन्हें वापस दे आती हूँ।

शंकर—सरकस के कपड़ों में कहाँ पब्लिक के बीच में जाती हो ? मैं कहता हूँ तुम्हें हो क्या गया ?

लैला—नहीं मैं जाऊँगी । जरूर जाऊँगी ।

शंकर—देखो तुम्हें ठीक नौकरी के वक्त मेरा मूड खराब न कर देना चाहिए । और मेरे खेल की कामयाबी बिल्कुल मेरे मूड पर ही क़ायम है । अगर हाथ से छूटते हुए छुरा तिल भर भी जगह से हट जायगा तो निशाने पर पहुँचकर एक इंच का फ़र्क़ भी भारी अनर्थ कर देगा ।

लैला—मुझे कोई परवा नहीं उसकी ।

शंकर—मुझे तो है । खेल के वक्त हमारा आपस में लड़ जाना हमारी बड़ाई नहीं है और मैं अपना खेल कसम करा भी तो नहीं सकता ।

लैला—(चॉकोलेट के डब्बे को मेज पर रखकर अपने निश्चय से हट जाती है) ।

[नेपथ्य में सरकस की पहली घंटी बजती है]

शंकर—यह पहली घंटी बज गई । मुझे जाना है । (तेजी से सरकस की तरफ़ चला जाता है) ।

[दूसरी तरफ़ से दीपल का राजकुमार आता है]

दीपल-कुमार—लैला तुम मुझ से क्यों नाराज हो गई ?

लैला—नहीं तो ।

दीपल-कुमार—अभी तो मैंने कहा । उस लड़के से शायद तुमने अच्छी तरह बातें नहीं कीं । कुत्ता भी उस पर भौंकने लगा । इसी से वह तुम्हारी शिकायत करने लगा मुझसे । यह कुत्ता है किसका ?

लैला—हमारी ही है । लेकिन यह आपके ऊपर तो नहीं भौंका ।

दीपल कुमार—तो क्या यह कुत्ता तुमने मेहमानों की टाँगें खींचने के लिए बाँध रक्खा है ?

लैला—यह प्रत्येक अपरिचित पर भौंकता है । इसी से हम इसे हर वक्त बाँधकर ही रखते हैं ।

दीपल-कुमार—मैं क्या अपरिचित हूँ तुम्हारा ? इसी से यह मुझ पर नहीं

मौका। कुत्ते की बड़ी भारी समझ होती है। मैना मैं नहीं जानता तुमने मेरी आत्मा के भीतर क्यों इतनी बड़ी जगह बना ली है। यह तुम्हारा ही गुण है मेरी योग्यता कुछ भी नहीं। तुम रोज छुरी की तेज धार से बचकर निकल जाने वाली एक अजीब औरत हो। मैं साफ कह देना जानता हूँ मन में कोई मैल नहीं रखता। (कुरसी पर बैठ जाता है)।

मैना—आपको यहाँ ऐसे समय में आना चाहिए, जब वे भी यहाँ मौजूद हों।

शीतल-कुमार—वे कौन? तुम्हारे पति?

मैना—हाँ।

शीतल-कुमार—तो क्या हर्ज है? अभी बुला लो न उन्हें। मैं क्या किसी से डरता हूँ? मैं उनकी गैरहाजिरी में तुम से दोस्ती करने के सख्त खिलाफ हूँ। लेकिन मजबूरी! मैं जब यहाँ आता हूँ तभी उनका पता नहीं रहता। बुलाओ न कहाँ हैं वे?

मैना—(घड़ी देख कर) अब तो खेल का समय हो गया।

शीतल-कुमार—अभी बहुत देर है पहली ही घंटी तो हुई है दूसरी फिर तीसरी। खेल शुरू होने पर भी तो तुम्हारा नम्बर न जाने कहाँ पर हो। कभी तो तुम्हारा इंतजार करते-करते इंटरवल भी खत्म हो जाता है।

मैना—नौकरी में आजादी कैसी? हमें प्रबंध और मालिक की आज्ञा का अनुसरण करना पड़ता है।

शीतल कुमार—और जो लोग सबसे ज्यादा पसंद किया जाता है वही सब से आखीर में रंग पर आकर दर्शकों को तरसाते हैं—न जाने क्यों?

मैना—अब मैं जाना चाहती हूँ। हमें दूसरी घंटी पर अवश्य ही पहुँच जाना होता है।

शीतल-कुमार—अभी दूसरी घंटी हुई ही कहाँ है? तुम स्टार हो। ऐसे कायदे-कानून मजदूरों के लिए होते हैं।

मैना—आप मुझे एक विद्रोह की शिक्षा दे रहे हैं। अब मुझे जाना ही चाहिए। जब मैं मन बूझकर दंड का भरना भर दूँगी तो फिर हमारा यह

कुत्ता बहुत खूँख्वार हो जाता है।

दीपल-कुमार—(हँसते-हँसते उठ जाता है और बिजली की बत्ती बुझाकर अँधेरा कर देता है)। क्यों?

सेता—(चिल्लाती है) कुमार साहब! आपने यह क्या कर दिया? यह तो बड़ी ओछी बात है। मैं गिर पड़ी थी। स्विच जलाइए।

दीपल-कुमार—देखा मैं तुम्हारी बात को गलत साबित कर रहा हूँ। देखा तुम्हारा कुत्ता बिलकुल चुप है। मैंने विलायती बिस्कुटों का बामका भर कर इसके भौंकने की मशीन बन्द कर दी है।

सेता—स्विच खोलिए, मेरे पति आ जाएँगे तो न-जाने अपने दिल में क्या कहेंगे?

दीपल-कुमार—ज़रा देर और ठहरो। मसला इस कुत्ते का है। तुम इसे मेरे ऊपर झपटाओ तो मैं जानूँ।

सेता—कुमार साहब आपके हाथ जोड़ती हूँ मेरी इज्जत का सवाल है।

दीपल कुमार—यह मुझ पर नहीं भौंक सकता। तुम कहती थीं अँधेरे में यह कुत्ता बहुत खूँख्वार हो जाता है।

सेता—तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ स्विच खोल दो। वे आज बिना सबब ही मुझ पर नाराज़ होकर गए हैं।

दीपल-कुमार—(स्विच खोल देता है) हैं! बिना सबब ही नाराज़ होकर गए हैं! क्यों गए हैं? इतनी सुन्दर तुम! रोज़ उनके छर्रों के बीच से अपनी जान बचा कर ले आती हो। अगर इस पर भी वे तुम पर बिना सबब नाराज़ होते हैं तो इन्सान की जान के भीतर उनमें हैवान बोलता है।

सेता—मैं उनकी धर्मपत्नी हूँ। आपको मेरे सामने उनकी पीठ पीछे उनकी जान के खिलाफ़ ऐसे अपशब्द नहीं बोलने चाहिए।

दीपल-कुमार—बहुत अच्छा अभी तो जाता हूँ मैं। कल कब आऊँ? ऐसे वक्त बुलाओ जब वे भी घर पर हों। मैं उनको देखना चाहता हूँ। मैं उनके साथ बातें कर यह जानना चाहता हूँ, ऐसे ज़ालिम आदमी के पास इतनी सुंदर स्त्री आखिर किन गुणों के कारण अटकी है?

कुत्ता बहुत खूँखार हो जाता है।

दीपक-कुमार—(हँसते-हँसते उठ जाता है और बिजली की बत्ती बुझाकर अँधेरा कर देता है)। क्यों ?

सेवा—(चिल्लाती है) कुमार साहब! आपने यह क्या कर दिया ? यह तो बड़ी खोटी बात है। मैं गिर पड़ूँगी। स्विच खोलिए।

दीपक-कुमार—सेवा मैं तुम्हारी बात को गलत साबित कर रहा हूँ। देखा तुम्हारा कुत्ता बिलकुल चुप है। मैंने विलायती बिस्कुटों का चामका भर कर इसके भौंकने की मशीन बंद कर दी है।

सेवा—स्विच खोलिए, मेरे पति आ जाएँगे तो न-जाने अपने दिल में क्या कहेंगे ?

दीपक-कुमार—ज़रा देर और ठहरो। मसला इस कुत्ते का है। तुम इसे मेरे ऊपर झपटाओ तो मैं जानूँ।

सेवा—कुमार साहब आपके हाथ जोड़ती हूँ मेरी इज्जत का सवाल है।

दीपक कुमार—यह मुझ पर नहीं भौंक सकता। तुम कहती थीं अँधेरे में यह कुत्ता बहुत खूँखार हो जाता है।

सेवा—तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ स्विच खोल दो। वे आज बिना सबब ही मुझ पर नाराज़ होकर गए हैं।

दीपक-कुमार—(स्विच खोल देता है) है! बिना सबब ही नाराज़ होकर गए हैं! क्यों गए हैं ? इतनी सुन्दर तुम! रोज उनके बूटों के नीचे से अपनी जान बचा कर आती हो। मगर इस पर भी वे तुम पर बिना सबब नाराज़ होते हैं तो इंसान की खाल के भीतर उनमें हैवान बोलता है।

सेवा—मैं उनकी धर्मपत्नी हूँ। आपको मेरे सामने उनकी पीठ पीछे उनकी शान के खिलाफ ऐसे शब्द नहीं बोलने चाहिए।

दीपक-कुमार—बहुत अच्छा अभी तो जाता हूँ मैं। फिर कब आऊँ ? ऐसे वक्त बुलाओ जब वे भी घर पर हों। मैं उनको देखना चाहता हूँ। मैं उनके साथ बातें कर यह जानना चाहता हूँ इस ज़ालिम आदमी के पास इतनी सुंदर [illegible] किन गुणों के कारण अटकी है ?

लेखा—कल दिन में आइए, चार बजे।

कौशल-कुमार—थैंक यू ! लेकिन जरा ठहरो मुझे डायरी में लिख लेने दो। (डायरी में नोट कर) अच्छा गुड बाइ ! (चला जाता है)।

शंकर—(छिपते-छिपते चुपचाप आता है) यह कौन था ? हूँ ! यही तो है वह ! लेखा मेरी आँखों में न-जाने कब से ऐसी ही मिट्टी डाली जा रही है। यह कब से यहाँ आने लगा ? टिंकर मेरा यह स्वामिभक्त कुत्ता यह भी मुझ से छीन लिया गया ! हे भगवान् ! (माथे पर हाथ रखकर आकाश की ओर देखता है)।

लेखा—(शंकर के सामने घुटने टेक कर) क्षमा-क्षमा ! वह आज ही पहली बार यहाँ आया।

शंकर—झूठी बात ?

लेखा—भगवान् साक्षी है मैं सत्य ही कह रही हूँ।

शंकर—दूर हट ! मैं कहाँ तक तेरे कलंक को ढक सकूँगा ? (उसका हाथ झटक कर देता है)।

लेखा—तुम्हें सोच-समझ कर कुछ कहना चाहिए। (उठ खड़ी हो जाती है)।

शंकर—तू बिजली बुझाकर यहाँ उसके साथ क्या कर रही थी ?

लेखा—क्या कर रही थी ? कुछ नहीं। बिजली अचानक बुझ गई थी।

शंकर—चुप रह ! मुझे सब मालूम है ! (गुस्से से उसे धक्का देकर चला जाता है)।

लेखा—(जमीन पर गिर पड़ती है। धीरे-धीरे उठती है) हे प्रभो ! क्या करूँ मैं ? लोग संसार से उठे हुए मेरे इस अभिशप्त जीवन पर दया नहीं करते और मैं इन्हें किसी तरह विश्वास नहीं दिला सकती। (नेपथ्य में दूसरी घंटी बजती है) दूसरी घंटी बज गई ! अब तो वहाँ जाने का समय हो गया।

[मुख में रंग पोते हुए गजानन के वेश में कृपाल आता है]

कृपाल—लेखा दूसरी घंटी भी हो गई। तुम अभी तक किस उलझन पड़ी हो ?

लेखा—कृपाल तुम्हें उन्होंने भेजा है ?

कुत्ता बहुत खूँखार हो जाता है ।

दीपल-कुमार—(हँसते-हँसते उठ जाता है और बिजली की बत्ती बुझाकर अँधेरा कर देता है) । क्यों ?

लेखा—(चिल्लाती है) कुमार साहब ! आपने यह क्या कर दिया ? यह तो बड़ी खोटी बात है । मैं गिर पड़ूँगी । स्विच खोलिए ।

दीपल-कुमार—लेखा मैं तुम्हारी बात को गलत साबित कर रहा हूँ । देखा तुम्हारा कुत्ता बिलकुल चुप है । मैंने विलायती बिस्कुटों का कायका भर कर इसके भौंकने की मशीन बंद कर दी है ।

लेखा—स्विच खोलिए, मेरे पति आ जाएँगे तो न-जाने अपने दिल में क्या कहेंगे ?

दीपल-कुमार—जरा देर और ठहरो । मसला इस कुत्ते का है । तुम तो मेरे ऊपर झपटाओ तो मैं जानूँ ।

लेखा—कुमार साहब आपके हाथ जोड़ती हूँ मेरी इज्जत का सवाल है ।

दीपल कुमार—यह मुझ पर नहीं भौंक सकता । तुम कहती थीं अँधेरे में यह कुत्ता बहुत खूँखार हो जाता है ।

लेखा—तुम्हारे हाथ जोड़ती हूँ स्विच खोल दो । वे आज बिना सबब ही मुझ पर नाराज होकर गए हैं ।

दीपल-कुमार—(स्विच खोल देता है) हैं ! बिना सबब ही नाराज होकर गए हैं । क्यों गए हैं ? इतनी सुन्दर तुम ! रोज उनके जूतों के नीचे से अपनी जान बचा कर ले आती हो । मगर इस पर भी वे तुम पर बिना सबब नाराज होते हैं तो इन्सान की खाल के भीतर उनमें हैवान बोलता है ।

लेखा—मैं उनकी धर्मपत्नी हूँ । आपको मेरे सामने उनकी पीठ पीछे उनकी शान के खिलाफ ऐसे शब्द नहीं बोलने चाहिए ।

दीपल-कुमार—बहुत अच्छा अभी तो जाता हूँ मैं । कल कब आऊँ ? ऐसे वक्त बुलाओ जब वे भी घर पर हों । मैं उनको देखना चाहता हूँ । मैं उनके साथ बातें कर यह जानना चाहता हूँ ऐसे जालिम आदमी के पास इतनी सुंदर स्त्री आखिर किन गुणों के कारण अटकी है ?

लैला—कल दिन में आइए, चार बजे।

दीपक-कुमार—ठीक है! लेकिन जरा ठहरो मुझे डायरी में लिख लेने दो। (डायरी में नोट कर) अच्छा, गुड बाइ! (चला जाता है)।

शंकर—(छिपते-छिपते चुपचाप आता है) वह कौन था? हूँ! यही तो है वह! क्या मेरी आँखों में न-जाने कब से ऐसी ही मिट्टी डाली जा रही है। वह कब से यहाँ आने लगा? छिःकर मेरा यह स्वामिभक्त कुत्ता वह भी मुझ से छीन लिया गया! हे भगवान्! (माथे पर हाथ रखकर आकाश की ओर देखता है)।

लैला—(शंकर के सामने मुड़ते हुए कर) क्षमा-क्षमा! वह आज ही पहली बार यहाँ आया।

शंकर—झूठी बात?

लैला—भगवान् साक्षी है मैं सत्य ही कह रही हूँ।

शंकर—दूर हट! मैं कहाँ तक तेरे कलंक को ढक सकूँगा? (उसका हाथ झटक कर देता है)।

लैला—तुम्हें सोच-समझ कर कुछ कहना चाहिए। (उठ खड़ी हो जाती है)।

शंकर—तू बिजली बुझाकर यहाँ उसके साथ क्या कर रही थी?

लैला—क्या कर रही थी? कुछ नहीं। बिजली अचानक बुझ गई थी।

शंकर—चुप रह! मुझे सब मालूम है! (गुस्से से उसे धक्का देकर चला जाता है)।

लैला—(जमीन पर गिर पड़ती है। धीरे-धीरे उठती है) हे प्रभो! क्या करूँ मैं? लोग शृंगार से ढके हुए मेरे इस अभिशप्त जीवन पर दया नहीं करते और मैं उन्हें किसी तरह विश्वास नहीं दिला सकती। (नेपथ्य में दूसरी घंटी बजती है) दूसरी घंटी बज गई! अब तो वहाँ जाने का समय हो गया।

[मुख में रंग पोते हुए कलाकार के वेश में कृपाल आता है]

कृपाल—लैला दूसरी घंटी भी हो गई। तुम अभी तक किस उलझन पड़ी हो?

लैला—कृपाल तुम्हें उन्होंने भेजा है?

कृपाल—नहीं तो। मैं अपने मन से आया हूँ। क्यों क्या बात है? तुम कुछ अनमनी और खोई-सी क्यों हो?

लेखा—क्या बताऊँ? (ठण्डी साँस लेती है)।

कृपाल—जब तुम दोनों साथ-साथ खेल में नहीं आते हो तो मुझे यह समझने में देर नहीं लगती कि उस दिन तुम्हारे बीच में विचारों की एकता नहीं रहती। और उस दिन तुम दोनों का मन-मुटाव ठीक करा देना मेरा बड़ा जरूरी कर्तव्य हो जाता है।

लेखा—लेकिन कब तक? यह दरार बढ़ती जा रही है।

कृपाल—दिन में तुम दोनों ठीक थे। अभी-अभी क्या कारण हो गया?

लेखा—कारण? कारण मैं भी हूँ कृपाल और तुम भी हो।

कृपाल—लेखा आज तक तुमने कभी ऐसा नहीं कहा था। गुस्से में भर जाने के कारण शायद तुमने अपनी समझ खो दी है।

लेखा—नहीं कृपाल सम्भवतः अधिक अपराधिनी मैं ही हूँ।

कृपाल—शंकर तो कभी ऐसा नहीं कहते। वे हमेशा मुझे अपना सच्चा दोस्त समझते हैं।

लेखा—यह उनकी कमजोरी है। वे सबके दोष मेरे ही माथे पर थोप देते हैं।

कृपाल—अच्छा चलो उन्हीं के सामने बातें हो जाएँगी। तुम्हारा खेल तो वैसे आज इंटरवल के बाद ही है लेकिन समय पर हाज़िर होना इंसान की बहुत बड़ी जागीर है।

लेखा—तुम जाओ मैं आती हूँ कृपाल। मुझे पत्थर की बनी न समझना। मैं खूब जानती हूँ हमारे आपसी झगड़ों से मालिक का काम न रुक जाना चाहिए। उनसे कुछ देर की छुट्टी माँग लेना मेरे लिये।

कृपाल—मैं ठहर जाता हूँ साथ ही चलेंगे।

लेखा—नहीं कृपाल मुझे भीतरी कपड़े बदलने हैं। तुम चलो मैं अभी आती हूँ।

कृपाल—देर न लगाना। (चला जाता है)।

लेखा—लेकिन उनके लिये बाद को कोई बवाल पैदा कर रख जाना उचित नहीं—यह मेरा बलिदान है बदला नहीं। (कुर्सी पर बैठ कर एक कागज में तीन शब्द लिखती है। फिर उठकर हाथ में ले उस पुर्जे को पढ़ती है और संभाल कर अपने बटुए में रख लेती है। फिर मेज पर से उस पत्र को उठाती है और खोलकर पढ़ती है) इस पत्र के लिखने वाले तुम कौन हो? मैं नहीं जानती तुम्हें यह पत्र भेज कर क्या मिला? (पत्र बंद कर फिर मेज पर रख देती है)।

हालेंकर—(आकर) लेखा तुमने छुट्टी क्यों मांगी है? क्या कुछ तबीयत खराब है?

लेखा—जरा देर को ही छुट्टी मांगी है। कुछ काम था।

हालेंकर—कितनी देर में आओगी?

लेखा—अभी ही हूं। (हालेंकर की दी हुई अंगूठी उंगली से उतार कर उन्हें देती हुई) यह अंगूठी मेरी उंगली में ढीली है।

हालेंकर—किसी ज्वेलर के यहां से ठीक करा लो।

लेखा—मेरे कोई पहचान का नहीं कोई इसका पत्थर बदल देगा। आपने यह जहां से खरीदी है वहीं ठीक करा दीजिए।

हालेंकर—(उसके हाथ से अंगूठी लेकर) लेकिन यह ठीक नहीं है।

लेखा—क्यों?

हालेंकर—मेरा मतलब इस अंगूठी से नहीं है। मेरा मतलब है तुम्हारा यह रात-दिन का मन मेल रखते तो नहीं अच्छा है—

लेखा—क्या अच्छा है?

हालेंकर—यहां पर नहीं कहूंगा ज्यादा बातें। बाहर चौकीदार गश्त लगाता होगा और भी तो कई लोग ऐसी बातों के सुनने में बड़ी दिलचस्पी रखते हैं। संदूकों में ताले लगा दिए हैं?

लेखा—हां।

हालेंकर—लाइट बुझा दो और तंबू का दरवाजा बांध कर चलो मेरे साथ। (लेखा बत्ती बुझा देती है, तंबू का दरवाजा बांधकर दोनों का जाना)।

[अगला परदा गिरता है]

दूसरा दृश्य

[स्थान सरकस के पास ही एक एकांत अँधेरी सड़क । दूर पर सरकस का
शोर सुनाई दे रहा है । हार्लेकर और लेना आते हैं ।]

हार्लेकर—मैं कहता हूँ शंकर तुम्हारा पति है । तुम्हें उसकी किसी बात का बुरा न मानना चाहिए ।

लेना—लेकिन उसकी वे बातें उसके छूने से भी कहीं तीखी हैं । उसके छूरे मेरे अंग की सीमा पर ही ठहर जाते हैं पर बातें हृदय और मस्तिष्क के पार चली जाती हैं ।

हार्लेकर—मैं इसे उसका दोष नहीं तुम्हारी ही चंचलता कहूँगा । छूरे के खेल में अगर तुम जरा भी अपनी जगह से इधर या उधर हो जाओगी तो क्या होगा जानती हो ?

लेना—हाँ जानती हूँ ।

हार्लेकर—इसलिये तुम अपनी जगह न छोड़ो अपनी मर्यादा कायम रक्खो । क्या है वह ? वह है सहनशीलता और शान्ति का लौह कवच ।

लेना—ऐसा भी किया है मैंने ।

हार्लेकर—बराबर ऐसा ही करती रहो ।

लेना—अब नहीं हो सकता ।

हार्लेकर—क्यों आखिर वह कहता क्या है तुम से ?

लेना—उन्होंने अपने तमाम दोस्तों से मेरा परिचय कराया है और ज... मैं उनमें से किसी के साथ हँसती-बोलती हूँ तो वे सहन नहीं कर सकते ।

हार्लेकर—तुम्हें इतना हँसना-बोलना न चाहिए ।

लेना—मुँह लटकाकर सबके सामने रोनी सूरत बना लेना यह मुझसे ... हो सकता । किसी की दी हुई चीज को देखकर भी वे नाराज हो जाते हैं ...

हार्लेकर—मैं समझता हूँ, तभी तुमने यह अँगूठी लौटा दी । अच्छी ... है तब मैं यह अँगूठी उसे ही भेंट दे दूँगा और कहकर यह उसकी ... दी थी जो न हो जायगी ।

शंकर—(सेज के बाहर से आवाज देता है) हार्लेकर साहब! हार्लेकर साहब!

हार्लेकर—कौन है? (सेवा से) शंकर मुझे ढूँढता हुआ यहीं आ पहुँचा।

शंकर—(आकर) गवर्नर साहब सरकस देखने को आनेवाले हैं अभी। उनके स्वागत के लिये आपका ही चलना जरूरी है।

हार्लेकर—हाँ मैं आता हूँ। (जाता है)।

शंकर—और कौन है यहाँ?

सेवा—(धीरे-धीरे) मैं हूँ।

शंकर—फिर तुम्हें अँधेरा ही क्यों पसन्द है आज?

सेवा—हार्लेकर साहब मुझे कुछ समझा रहे थे।

शंकर—यही समझा रहे थे कि शंकर को तलाक देकर छुट्टी पा जाओ।

सेवा—तुम उन्हें ऐसा क्यों समझते हो?

शंकर—चलो, इस झगड़े को यहीं पर रख दें आज। गवर्नर के एकाएक आ जाने से शायद प्रोग्राम में कुछ हेर फेर हो जाय। बहुत मुमकिन है हमारा खेल इण्टरवल के पहर ही खींच लिया जाय। (दोनों जाते हैं)।

[परदा उठता है]

तीसरा दृश्य

[स्थान—सरकस के रिंग का एक भाग। दर्शक रिंग के बाहर हैं, जहाँ से कभी-कभी उनकी तालियाँ बजती सुनाई देती हैं। सामने एक बोर्ड रक्खा हुआ है। कृपाल और बंसी आपस में हँसी-मजाक कर रहे हैं। कृपाल के हाथ में एक पका हुआ बेंत है जिसकी मार के डर से बंसी भागता है। कृपाल उसका हाथ पकड़कर खींच लाता है।]

कृपाल—अम बोला तुम जाता किधर है?

बंसी—अम अपने घर जाता है।

कृपाल—अम तुमारा तसवीर खींचेगा।

शंकर—नाक काटूँगा ।

कृपाल—(बंसी को आगे कर) इसकी ।

[बंसी कृपाल के घर मारना चाहता है, वह सिर नीचे कर लेता है । बंसी फिर गिर पड़ता है । दर्शक ताली बजाते हैं ।]

शंकर—(बंसी को ले जाकर बोर्ड के सामने खड़ा करता है) यहाँ जमकर खड़े होओ ।

बंसी—(हिचकिचाकर) क्या तुम भी तसवीर खींचेगा ?

शंकर—नहीं मैं एक तमाशा दिखाऊँगा ।

बंसी—दिखाओ फिर ।

कृपाल—नीट बढ़ियावाला दिखाना ।

शंकर—(कुछ दूर जाकर ज्योंही उसके ऊपर फेंकने को छुरा तानता है, त्योंही) ।

बंसी—अरे बापरे ! हमारा मौरट—(घबराकर भागता है) ।

कृपाल—(दौड़कर उसे पकड़ लेता है) तुम बोला अभी हमारा शादी नेई !

बंसी—होने दो साफ्टा ।

कृपाल—(बंसी को अपने कपड़े से उस बोर्ड के सामने बाँध देता है) ।

शंकर—(ज्योंही छुरा फेंकना चाहता है बंसी बोर्ड को लेकर ही घूम जाता है) ।

लेखा—(आकर उसे खोल देती है । कृपाल बोर्ड सीधा कर देता है । लेखा बोर्ड के आगे खुद खड़ी हो जाती है) ।

कृपाल—ऐ ऽ ऽ ! क्या तुम यहाँ पर खड़ा होने माँगटा है ?

लेखा—हाँ ।

कृपाल—जिन्दगी से बेजार है ?

लेखा—हाँ ।

कृपाल—क्यों किसी कोई प्यार नेई करटा ?

लेखा—नहीं ।

कृपाल—(दौड़कर छुरा ताने हुए शंकर के पास जाता है) तुम क्या

करता भाँपता यह ? मर जायगा यह चौरट !

शंकर—क्या करता है ?

[दोनों नवजवान इधर-उधर दौड़कर चिल्लाते हैं—"पुलिस ! पुलिस ! शंकर छुरा फेंकता है बिजली एक क्षण के लिए बुझती है—उस अँधेरे में बड़ी जोर से सेवा चीखती है—"हाय !" शीघ्र ही उजाला होता है । सेवा जमीन पर गिरी दिखाई देती है । दौड़ता हुआ होलॅकर आकर खून से लथ पथ सेवा को उठाता है । दोनों नवजवान और डाक्टर भी वहीं पर आ जाते हैं ।]

होलॅकर—शंकर ! क्या कर दिया तुमने ? छुरा इसके दिल में घुस गया ।

शंकर—मेरा कोई कसूर नहीं यह छुरा अपनी जगह से छूट गई !

होलॅकर—(उसकी नाड़ी देख) नाड़ी बन्द हो गई ।

दीपक-कुमार—(दौड़कर आता है) मुझे मालूम थी यह बात ! तुम खूनी हो । (पुकारता है) पुलिस ! पुलिस !

शंकर—मैं खूनी नहीं हूँ ।

होलॅकर—इसके हाथ में यह कैसा पर्चा है ? (सेवा के हाथ से एक पर्चा) लेकर पढ़ता है—"अपराध मेरा ही—सेवा ।" नहीं शंकर खूनी नहीं है ।

दीपक-कुमार—(उस कागज को लेकर पढ़ता है) ।

शंकर—(माथे पर हाथ मारता है) हा भगवान् !

[बाजों में धड़धड़ी और शोर]

[परदा गिरता है]

पात्र

गिरिधर
कोलवर्ड का भूत
सरोजनी
पल्टू
परशुराम
प्रभाकर
पड़ोसी १
पड़ोसी २
पड़ोसी ३
पड़ोसी ४
सर विलेकजी
सेठ करसीडजी
सेठ मूलजी
नौकर
धनाढ्यचंद

क्रॉसवर्ड चपर



"मैने हजारों की भाग्य ग्रौर हाथ की रेखाग्रों को इधर को उधर कर दिया है।"

पहला दृश्य

[गिरिधर के सोने का कमरा। कमरे में अँधेरा। मेज पर बही-अखबार एक दिखावटी किसी सौदागर का घर। सरोजनी उठ गई है वह भीतर के कमरे में बिजली जलाती है और बर्तनों की खटर-पटर करने लगती है। भीतर की बिजली की रोशनी से चारपाई पर पड़ा गिरिधर दिखाई देता है। उसका मुँह लिहाफ से ढका है। कॉसमर्स का भूत—सिर से पैर तक कॉसमर्स की पोशाकों से सज्जित बाहर खड़े भीतर से बोलता है।]

कॉसमर्स का भूत—गिरिधर! अजी ओ मिस्टर गिरिधर!

गिरिधर—(लिहाफ के भीतर ही से) हाँ-हाँ अपना मतलब तो कहो।

भूत—मैं कहता हूँ तुम्हारे घर का दरवाजा खुला ही है और रात का वक्त!

गिरिधर—तो भाई, इस दिवालिए गिरिधर के पास कौनसी सोने की ईंटें रखी हैं जो उन्हें खिसकाने के लिए कोई इस घर में घुसने की मेहनत करेगा?

भूत—मेरे भोले-भाले दोस्त! मनुष्य कुछ परिश्रम करे तभी तो तकदीर भी उसकी सहायता करती है। अगर कहीं तकदीर और तदबीर का एका हो जाए तो तुम कहते हो ईंटें—यहाँ खड़े हो जाएँ सोने के पहाड़! किसी की बपौती है क्या?

गिरिधर—तुम्हारे शब्द लालच टपकाते हैं।

भूत—दूसरे की दौलत को धोखा-धड़ी से हथियाने का नाम लालच है। अपने परिश्रम के मीठे फल के लिए ऐसे बदनाम शब्द का इस्तेमाल क्यों करते हो?

गिरिधर—तुम्हारा क्या मतलब है जी!

भूत—मतलब तो तुम्हारा ही है—मैं तो सिर्फ एक बहाना हूँ।

गिरिधर—अच्छा? ऐसी बात है तो फिर मुश्किल क्या है! जब दरवाजा

घूमा ही है तो आ क्यों नहीं जाते भीतर ? शरम क्यों लग रही है ? आ जाओ दोस्त जरा तुम्हारी शक्ल देखकर तो भरोसा हो ।

[कौंसवर्थ का भूत भीतर आ जाता है]

भूत—लो आ गया मैं ।

गिरिधर—लेकिन तुमने यह मुँह क्यों ढक रखा है ?

भूत—मेरे राज को मेरा बनानेवाला भी नहीं जानता इसलिए ।

गिरिधर—समझ गया ! समझ गया ! मिस्टर कौंसवर्थ ! तुम तो मेरे बड़े पुराने दोस्त हो ।

भूत—जो मेरा विश्वास करते हैं मैं उन सबका ही दोस्त हूँ । मैंने सैकड़ों झोपड़ियों को रातों रात महलों में बदल दिया ।

गिरिधर—यह तो सब मुझे मालूम है लेकिन—

भूत—लेकिन तुम्हें यह भी जानना जरूरी है और फोड़नेवाला ही कभी न-कभी निशाना को देखता है भाल पर हाथ रखकर मनसूबे करनेवाला नहीं ।

गिरिधर—मैं कोरे मनसूबे करनेवाला हूँ तो यह हर डाक से पहेलियों के हल कौन भेजता है ?

भूत—सब्र करो सब्र का फल बड़ा मीठा होता है ।

गिरिधर—पर कब तक मैं सब्र करता जाऊँगा क्या तब ?

भूत—मजे रहो देखते रहो । जब तकदीर का सितारा चमक उठेगा तो सब सूद के सब वसूल हो जायगा । (जाने लगता है) ।

गिरिधर—तुम तो जाने लगे ! अब आप ही तो कोई तदबीर बताओ कि तकदीर जाग पड़े ।

[भीतर के कमरे से स्टोव के जलने की आवाज सुनाई देती है]

भूत—ना भाई, न तो मुझे कुछ मालूम ही है और न मैं कुछ बता ही सकता हूँ । (फिर जाने लगता है) ।

गिरिधर—स्टोव भभक उठा है चाय लेकर आयगी अभी पी जाओ नहीं तो श्रीमती जी नाराज हो जावेंगी ।

भूत—नहीं जी ! (कमरे में चक्कर से दौड़ता है । चकरी-सी चलती है

भीतरी कमरे की रोशनी के बुझने से स्टेज पर बिलकुल अँधेरा हो जाता है, क्रॉसवर्ड का भूत गायब हो जाता है। भीतरी कमरे में फिर उजाला हो जाता है)।

गिरिधर—(सोते-सोते) नहीं मैं नहीं जाने दूँगा। (दोनों बाहों में लिहाफ को भर लेता है) नहीं आज बड़ी मुश्किल से हाथ आने पर छोड़ कौन देगा तुम्हें? (चारपाई पर लोटता हुआ जमीन पर गिर पड़ता है। उसके जमीन पर गिरते ही स्टेज में पूरा उजाला हो जाता है। गिरिधर अपनी पकड़ में लिहाफ को पाकर चौंकता है और पुकारता है) अजी सरोजनी जी! सुनती नहीं हो क्या? श्रीमती जी! बड़ा बढ़िया सपना देखा है। तकदीर पकड़ में आई है इस बार। फौरन चली आओ। मौके को जल्दी में ही चीन्हना होता है। (जब भीतर से कोई जवाब नहीं मिलता तो लिहाफ चारपाई पर डाल मेज पर से अलार्म क्लॉक उठाकर उसमें चाबी दे अलार्म बजाता है—टन् टन्-टन्-टन्!)

सरोजनी—(भीतर से तौलिये से हाथ-मुँह पोंछती हुई आती है) हैं! यह हो क्या रहा है?

गिरिधर—जब बहुत पुकारा और जवाब नदारद तो यह खतरे की घंटी बजानी ही पड़ी। लेकिन मैं कहता हूँ तुम थीं कहाँ?

सरोजनी—गुसलखाने में और कहाँ होती?

गिरिधर—लेकिन आनेवाली घटनाएँ क्या पहले ही नहीं बोल उठतीं। यह इस बात का इशारा है कि अब हमारे हर कमरे में बिजली की घंटियाँ लग जायेंगी और एक ही बटन दबाने पर वे सब की सब बोल उठेंगी। तब गुसलखाना क्या तुम डाकखाने में भी होगी तो तुरंत ही चली आओगी।

सरोजनी—(गिरिधर के हाथ से घड़ी छीनकर) क्या बच्चों की सी बातें कर रहे हो! घड़ी टूट जायगी तो?

गिरिधर—क्या बढ़िया सपना! साक्षात् कुबेर जी आए थे वर देने को। मैंने कह दिया बिना मेहनत किए मुझे कुछ भी कबूल नहीं। (पास रखा हुआ अखबार उठाता है और उसे दिखाता है) यह देखो नंबर—पहला इनाम

एक लाख रुपया।

सरोजनी—तुम जैसी भोली-भाली मछलियों को फँसाने का जाल।

गिरिधर—और यह जो फोटो आती हैं बैंकों की तसवीरें छपती हैं।

सरोजनी—लेकिन तुम्हारी फोटो तो नहीं आई कोई अभी तक।

गिरिधर—यह भी आ जायगी पहले इनाम तो आने दो। और मैं तो फो तुम्हारे साथ खिंचवाकर भेजूँगा—सारी दुनिया को मालूम हो जाय कि भाग्यवान् जोड़ा कौनसा है?

सरोजनी—मैं इस जुए की जीत में अपनी फोटो देकर बदनामी क्यों लूँ..

गिरिधर—इज्जतहतक का दावा कर देगा कोई?

सरोजनी—कौन?

गिरिधर—क्रॉसवर्ड की कंपनीवाले और कौन?

सरोजनी—मैं कहती हूँ इस काले बाजारी को कोई नहीं रोकता। अगर सचमुच में वे इतने भारी भारी इनाम बाँटते हैं तो इनके पास क्या कोटी बचत होती?

गिरिधर—चुपो चुपो—तुम्हारी हर चीज पर शक करने की आदत नहीं जायगी क्या? (अखबार पढ़ते हुए) देखो क्या बढ़िया सौदा है। दस रुपए में तीस हल! एक रुपए में तीन—सवा पाँच आने में एक और बैठे साठ रुपए में तीस! अभी पचास का अवसर तो वैसे ही हो गया। तुम नहीं न कहना इस बार बड़ी भारी बिजिनेस है। अब के ऐसा तीर छोड़ता हूँ कि क्रॉसव बनानेवाले की दोनों आँखों में घुस जाय। (बड़ी नम्रता से दोनों हाथ जोड़ कर) देवी जी मनीआर्डर और रजिस्ट्री का खर्च भी सब मेरे जिम्मे।

सरोजनी—नहीं मेरे पास कोई कानी कौड़ी नहीं। अभी पूरा महीना भूत की तरह मेरे सिर पर खड़ा है।

गिरिधर—तुम्हारे पैर पड़ता हूँ सिर्फ दस रुपए।

सरोजनी—दस पैसे भी किसके पास हैं?

गिरिधर—जरा ख्याल तो करो तीस हल भेज सकेंगे। मैं ऐसा हिसाब लगा कर तीसों लाइनें भरूँगा कि वही हल बनकर आकर उसमें बैठ जायेगा। मैं कब

कहता हूँ तुम्हारे पास है। पास-पड़ोस से कहीं से माँग लाओ। एक के बदले में न हो दो-चार सखियों से टोटल पूरा कर लाओ। यह सहयोग का जमाना है। अकेले कौन काम पूरा होता है?

सरोजनी—(सिर पर हाथ रख कुछ सोचने लगती है)।

गिरिधर—जीवन और मरण का प्रश्न है! कैसी बढ़िया कोठी में रहते थे। भाग्यहर्ता ने धोखा दिया कि वह बँधा-बँधाया बाँध टूट गया। हमारी आँखों में धूल झोंककर उन्होंने दीवार में कमजोर मसाला लगा दिया। बाहर की टीप और पलस्तर कब तक रहती? सरकार का हरजाना भरने में ही हमारा दीवाला निकल गया। इस टूटे और टपकते हुए मकान में जीवन बिताने को राजी हो तो मुझे फिर क्या कहना है?

सरोजनी—हम खाने-कपड़े में कमी कर लेंगे मकान तो तुम्हें कोई ढूँढ़ना ही चाहिए। तुम्हारे उस दाई बाबा के बाँध की तरह इस भरी बरसात में न जाने कौन-सी दीवार किस समय हमारे ऊपर गिर जाय।

गिरिधर—यही तो बात है जो कर्जा लेकर भी मैंने क्रॉसवर्ड के कूपन भरने की प्रतिज्ञा की है। जाओ कोई शर्म नहीं है। मैं कहीं से माँग लाता लेकिन जिस मुँह से मैं लाखों का सौदा करता था—उससे दस रुपए उधार माँगूँ? नहीं! जाओ न जाओ फिर तारीख जा रही है। सौभाग्य किसी की प्रतीक्षा नहीं करता उसे तो दौड़ कर पकड़ लेना होता है।

सरोजनी—लेकिन—

गिरिधर—सिर्फ दस रुपए! जिससे कहोगी वह दे देगा एक लाख का इनाम! सोचो तो सही तिल की ओट में पहाड़! नहीं यह सुनहरा अवसर खो देने का नहीं है।

सरोजनी—लेकिन नाव उलट रही है।

गिरिधर—उलटने दो उसे! पलटू तो है।

सरोजनी—देखती हूँ शायद—(चली जाती है)।

गिरिधर—(कुर्सी में बैठकर क्रॉसवर्ड के कूपन में कुछ लिखना चाहता है, डिक्शनरी खोलता है। पुकारता है) पलटू!

पन्नू—(आकर) जी सरकार !

गिरिधर—बाल तेज करने के लिए यह जरूरी है। पसंद क्या है यह ?

पन्नू—(सिर खुजलाकर एक कंधे पर के झाड़न को दूसरे कंधे पर रखता है) क्या है आपका मतलब ? फिर पजल भरने लगे आप ? मैं कहता हूँ यह सरासर पढ़-लिखों की खतरनाक बीमारी है।

गिरिधर—तुम्हें इससे क्या ? तू सिर्फ यह बता बाल तेज करने को क्या चाहिए ?

पन्नू—बाल तेज करने को चाहिए पेट्रोल।

गिरिधर—थोड़ा या कोड़ा ?

पन्नू—दोनों। घोड़ा होगा तभी तो कोड़ा कामयाब होगा।

गिरिधर—घोड़ा नहीं तू गधा है जा काम कर।

पन्नू—(निराश हो चला जाता है)।

गिरिधर—(एक पैसा निकाल कर उछालता है) हेड और मन्, टेल और टू। हेड घोड़ा टेल कोड़ा ! (पैसा कहीं दूर चला जाता है) है कहाँ गया ? (चारपाई के नीचे ढूँढता है)।

सरोजनी—(आती है)।

गिरिधर—क्या समाचार है ?

सरोजनी—कूपन पूरा भर लिया ?

गिरिधर—(उसके हाथ से दस रुपए का नोट छीन लेता है) कमाल का. क्या देर लगती है ? सिर्फ एक ही लाइन बाकी है। घोड़ा या कोड़ा ? दोनों. सही है।

सरोजनी—क्या बोलूँ ?

गिरिधर—उस रुपए के हेड में है या टेल में ढूँढो उसे कहीं नहीं है।

सरोजनी—(हैरान होकर) कैसे रुपए ? रुपए तो तुम ले चुके हो।

गिरिधर—(नोट पर नजर कर) थैंक यू ! थैंक यू ! पहली तारीख को यह उधार चुका दूँगा और एक महीने बाद तो घर ही में टकसाल खुल न गयी। ढूँढो तो सही उस रुपए को यह खेल रुपया है, अभी मैंने उससे फिर-गट किया।

उसके एक तरफ घोड़ा दूसरी तरफ कोड़ा। देखो किसके सहारे पड़ा है। चित या पट?

पलटू—(चाय की ट्रे लाकर घुसता है। जल्दी से ट्रे को मेज पर रखकर चारपाई के भीतर घुसता है) जी सरकार मैंने देख लिया। (चारपाई के नीचे से रुपया निकाल लाता है) जी यह है।

गिरिधर—(नाराज होकर) क्या था इसमें?

पलटू—था क्या नहीं है।

गिरिधर—अरे मैं कहता हूँ इसमें घोड़ा था या कोड़ा?

पलटू—हूँ! पढ़ लिखे होकर क्या बात करते हैं आप?

गिरिधर—मैंने इसका हेड-टेल किया था कैसे पड़ा था यह?

पलटू—मैं नहीं जानता फिर उछाल लीजिए।

सरोजनी—(चाय बनाकर) लो चाय पी लो।

गिरिधर—(कुछ सोच विचारकर) अच्छा, इन दोनों उँगलियों में से एक को छू लो।

सरोजनी—(हिचकिचाती है, फिर हँसकर एक उँगली पकड़ लेती है)।

गिरिधर—आ ऽ ऽ हा ऽ हा! आखिर में घोड़ा ही निकला। (कूपन में लिखता है। फिर कूपन में पढ़कर) बीमारी अक्सर ऐसा कर देती है।

पलटू—कैसा कर देती है?

गिरिधर—ढीला या चीला? चित ढीला पट चीला! (रुपया उछालता है—दोनों रुपए की तरफ देखते हैं) पट! पट! पट—चीला! (कूपन में लिखता है) बस अब लाइन का आखिरी शब्द—(सरोजनी से) नंबर एक बचन, नंबर दो बटन। बोलो क्या लिखूँ? जो कहोगी वही लिख दूँगा।

सरोजनी—संकेत क्या है?

गिरिधर—इसका टूटना अच्छी बात नहीं।

सरोजनी—बटन का टूटना अच्छी बात नहीं।

गिरिधर—बटन टूटा तो फिर लग जायगा बचन का टूटना अच्छी बात नहीं।

गिरिधर—अच्छा शुरू करो पंडितजी (घड़ी देखकर) नतीजा आने ही वाला है। (स्विच घुमाता है। उसमें घर्रर्र घर्रर्रर की आवाजें आती हैं) यह क्या हो रहा है ?

परशुराम—कुछ मौसम की खराबी—या रेडियो में कोई कसूर—

गिरिधर—इसकी पूजा नहीं कर सकते ? सरोजनी देखो !

[अचानक रेडियो बोलने लगता है—"ऑलवर्ड नम्बर ए तीन सौ बावन का रिजल्ट नोट कीजिए—एक-एक-एक एक, दो-दो-दो एक-दो एक-दो, एक-एक, दो-दो-दो।" दोनों पति-पत्नी कागजों में लिखते हैं। रेडियो बन्द हो जाता है।]

परशुराम—हे भगवान् ! तेरी जय हो ! बाबूजी मैंने बड़ी लम्बी लगन से जप किया है।

गिरिधर—ठहरो पंडितजी अभी कोई बात नहीं ! (लिफाफा खोलकर) लो सरोजनी पहले तुम अपना कूपन मिलाओ फिर मैं अपना चेक करूँगा। (कागज में से पढ़ता है) एक-एक-एक-एक दो-दो-दो एक-दो एक-दो—

सरोजनी—ठहरो जल्दी मत करो।

गिरिधर—(देखते हैं) इतना तो मिला न ?

परशुराम—घबराओ नहीं सब मिल जायगा।

सरोजनी—(पढ़ती है) एक-एक-एक—

गिरिधर—तुम सीखो कहाँ तक पढ़ोगी। मुझे पढ़ने दो। (धीरे-धीरे पढ़ता है)—एक—एक—एक—एक दो—दो—दो एक—दो एक—दो, एक—एक दो—दो—दो !

सरोजनी—(खुशी से उछलकर) मिल गया !

गिरिधर—सब मिल गया ? ऑल करेक्ट !

सरोजनी—ऑल करेक्ट !

गिरिधर—हाथ मिलाओ ! (दोनों हाथ मिलाते हैं)।

[परशुराम भी हाथ बढ़ाता है मिलाने को]

गिरिधर—(अपना हाथ खींच लेता है) कूपन भरने में कितनी मेहनत

को देंगे ?

सरोजनी—और उनकी फीस चुकाने में कहाँ कहाँ नहीं जाना पड़ा मुझे ?

गिरिधर—(सरोजनी के मुँह पर हाथ रखता है)।

परशुराम—और जो मैंने इस पर शनीचर महाराज का सवा लाख जप पढ़ा है ?

गिरिधर—देखिए पंडितजी मैं विधाता के लेख को मानता हूँ जिस तरह वह अटल है ऐसे ही यह मेरे लिखे कूपन भी। मैं इनको लाख मुहर लगाकर एक लिफ़ाफ़े में रखता हूँ। क्या आप इनके ऊपर पाठ पढ़कर इनके लिखे अंकों का कोई अक्षर बदल सकते हैं ?

परशुराम—(सोच विचार में पड़ जाता है)।

गिरिधर—ठहरो—इनाम तो आ जाने दो तुम्हारी पूजा भी कर दी जायगी। सरोजनी अब तुम बोलो मैं मिलाता हूँ।

सरोजनी—(पढ़ती है) एक—एक—एक—एक दो—दो—दो एक—दो एक—दो एक—एक दो—दो—दो (जल्दी से आखिरी अंक को सही कर) नहीं एक।

गिरिधर—ठीक-ठीक बोलो आखिरी अंक क्या है, दो या एक ?

सरोजनी—दो। दो ही है।

गिरिधर—(उसका कागज़ लेकर सन्तुष्ट होता है) ओह! तुमने तो अभी दिल तोड़कर रख दिया था। (फिर एक बार सब कागज़ों को मिलाकर खुश होता है उछलने लगता है) ऑल करेक्ट सॉल्यूशन! (नाचने लगता है) एक—एक—एक—एक दो—दो—दो एक—दो एक—दो एक—एक दो—दो—दो! ओह! मेरा भगवान जानता है—मैंने कितने ज़मीन-आसमान एक किए इसके लिए। आ ही गया अन्त में एक लाख रुपया!

सरोजनी—और भी तो किसी का सही होगा।

गिरिधर—क्यों होगा? बिलकुल सही किसी बिरले ही का होता है। मान लो एक का ही भी गया तो पचास हज़ार क्या कम है। तमाम ज़िन्दगी भर पैर फैलाकर खाएँगे-पिएँगे और मौज उड़ाएँगे।

को ये मिस्टर बबालकर आए हैं हमारे यहाँ और कुछ मांगता भी तो—

बबालकर—थैंक यू यह तकलीफ न कीजिए आप मैं तो खाना खाकर आया हूँ। (कैमरा ठीक करते हुए) रेडी! वन्-टू!

गिरिधर—नहीं नहीं अभी जल्दी क्या है? अभी सरोजनी चाय पहले दो—तुम आ जाओ।

बबालकर—पूरा सही हल कैसे भेज दिया आपने?

गिरिधर—मेरे दिमाग की तारीफ।

बबालकर—(नोट-बुक में लिखते हुए) चार-पाँच सवाल और करूँगा बस। आप क्या समझते हैं किसी और का भी पूरा सही हल होगा?

गिरिधर—हरगिज नहीं होगा।

बबालकर—क्यों?

गिरिधर—मैंने मन की ताकत से इस हल को पाया।

बबालकर—पाये को फिर पा सकोगे?

गिरिधर—ज्यादे लालच नहीं करना।

बबालकर—एक लाख रुपया अचानक पा लेने की खुशी तुम्हारा दिल और दिमाग सहन कर लेगा?

गिरिधर—एक लाख के घाटे की चोट भी सह सका हूँ। नौटिंघा बाँध के ठेके का नकसान मैंने अकेले भरा था।

बबालकर—(नोट-बुक में लिखता है)।

गिरिधर—सरोजनी!

सरोजनी—(दूसरी साड़ी पहनकर आती है) क्या है?

गिरिधर—बड़ी देर लगा दी तुमने। ये फोटो खींचने को आए हैं। (बबालकर से) कुछ और पूछना है?

बबालकर—थैंक यू अब कुछ नहीं। (जाने लगता है)।

गिरिधर—(उसे रोककर) फोटो तो उतारो।

बबालकर—ओह।

गिरिधर—सही हल पैदा करने में हम दोनों की मेहनत है।

बबालकर—कोई डर नहीं। (कैमरे का फोकस ठीक करता है) रेडी! वन् टू!

[गिरिधर कुर्सी पर बैठकर सरोजनी को अपनी बगल में खड़ा करता है]

गिरिधर—(अचानक बीच ही में उठकर) ठहरो मिस्टर, अभी ज़रा एक कसर रह गई है। (सरोजनी को कुर्सी में बिठाकर स्वयं उसकी बगल में खड़ा हो जाता है)।

बबालकर—(फोकस ठीक कर कैमरा खटखटाता है) थैंक यू! (सिर का टोप उतारकर सिर झुका चला जाता है) वाह-वाह!

गिरिधर—अरे मिस्टर यह तो बताओ कब छप जायगी यह तस्वीर?

बबालकर—(नेपथ्य से) अभी रात ही रात में।

गिरिधर—(सरोजनी का हाथ पकड़ ज़बर्दस्ती उसे भी नचाते हुए—) धन् धन्-धन् धन् टू-टू-टू धन्-टू धन्-टू धन्-धन् टू-टू-टू। एक लाख का बंपर मारा!!

[परदा गिरकर उठता है और एक रात का व्यतीत होना प्रकट करता है। दूसरे दिन सुबह उसी कमरे में गिरिधर सोया हुआ है। उसकी पत्नी दूसरे कमरे में है। बाहर से अखबारवाला चिल्लाता है। "बाबू गिरधर ने बंपर मारा—एक लाख रुपए का इनाम!" गिरिधर आँखें मलते हुए उठ बैठता है। फिर अखबारवाले को बुलाता है।]

गिरिधर—सरोजनी! सरोजनी! मैं समझ रहा था मैंने फिर सपना देखा—यह तो ठोस सचाई है।

[बाहर से कोई दरवाज़ा खटखटाता है]

कई पड़ोसी—(बाहर से) बधाई है! गिरिधरजी बधाई है। दरवाज़ा तो खोलो।

[गिरिधर दरवाज़ा खोलता है। कई पड़ोसी हाथ में एक-एक अखबार लिए आते हैं और गिरिधर को घेर लेते हैं।]

सब—बधाई है बधाई है!

पड़ोसी १—(गिरिधर की पीठ ठोंककर) वाह दोस्त! पूरा एक लाख!

कैसे ही अकेले! शाबाश!

पड़ोसी २—कब सूझा कब भरा और कब भेजा किसी को पता भी नहीं दिया।

पड़ोसी ३—हमें तो बहुत खुशी है—हमारे मुहल्ले में तो आया एक लाख का इनाम! तार आया या नहीं?

पड़ोसी ४—तार आने में क्या रखा है अब? साक्षात् अखबार में नाम निकल गया फोटो छप गई।

[अखबार खोलकर सब उसे फोटो दिखाते हैं।]

गिरिधर—हाँ भाई सब आप लोगों की [illegible] है भगवान की कृपा है।

पड़ोसी १—मेरी समझ में तुम्हें पूरे का पूरा पैसा किसी इन्वेस्टमेंट में लगा देना चाहिए कि उसकी हिफाजत और वृद्धि हो।

पड़ोसी २—और हम गरीब पड़ोसियों को काम मिल जाय।

गिरिधर—मैं तो भाई फार्म खोलने का विचार कर रहा हूँ तैयार हो तो एक-एक कुदाली दे दूँगा सबके हाथों में।

पड़ोसी ३—हम तो पढ़े-लिखे हैं।

गिरिधर—तो कुदाल से हरूफ ही लिखना धरती पर, मतलब जमीन के दूर जाने से है। लेकिन पहले रुपया तो आने दो।

पड़ोसी ४—ख्याल रखना हमारा।

गिरिधर—जरूर।

[चारों पड़ोसी जाते हैं। सेठ किशनजी, सेठ नूरसेठजी, सेठ मूलजी का आना—हर एक के हाथ में एक-एक अखबार है।]

तीनों—मुबारिक हो गिरिधरजी।

गिरिधर—इतने बड़े लोग जो इधर की तरफ से गुजरना भी पाप समझते थे आज मेरे घर पधारे हैं धन्यभाग! इस गन्दी गली के टूटे हुए मकान में जमीन पर बिछाने को यहाँ कोई बोरा भी नहीं क्या स्वागत करूँ मैं आपका, आज लेकिन भगवान् ने मेरी सुन ली।

सर किशनजी—अजी जिन्दगी में न चढ़ाव-उतार तो सभी ही हुए हैं। दिल साफ चाहिए आदमी का कांच की बोतल की तरह जैसा भीतर वैसा बाहर!

सेठ पुरसोटजी—वाह सर किशनजी ने क्या बात कही! गिरिधर जी अब आपकी मुश्किलें पार हो गईं। वह जो काले रजिस्टर में आपका नाम चढ़ गया था सर किशनजी उसे वहाँ से खारिज करा देंगे और फिर आपकी ठेकेदारी चल पड़ेगी।

गिरिधर—लेकिन सेठजी—

सेठ पुरसोटजी—अजी ये आपको तमाम परमिट भी दिला देंगे।

सेठ मूलजी—और जो सेवा मुझसे हो मैं भी तैयार हूँ।

गिरिधर—सब आपकी दया है। क्या खातिर करूँ मैं आपकी? कहीं आपके ठहरने के लायक यहाँ आपको बिठाने की भी तो जगह नहीं। रायसाहब बंगला अभी किराए पर उठा या नहीं?

सेठ मूलजी—उसमें तो मैं खुद ही आने की सोच रहा हूँ। क्यों आपकी क्या मंशा है?

गिरिधर—जब तक मैं अपनी कोठी नहीं बनवा लेता मुझे किराए पर क्यों न दे दें आप उसे। किराया क्या है उसका?

सेठ मूलजी—बड़ी खुशी से आप आज ही चले आयें। किराया जो होगा देखा जायगा।

सेठ पुरसोटजी—और एक राय मैं भी दूँगा जब तक आप कोई ठीक-ठीक बिजिनेस सोच-समझ नहीं लेते तब तक आप अपना तमाम रुपया हमारे बैंक में रख दें। बहुत मुनासिब सूद हम आपको देते रहेंगे।

गिरिधर—सेठजी अभी कहाँ से रख दूँ, रुपए के आते-आते एक-आध महीना तो लग ही जायगा।

सेठ पुरसोटजी—अरे तो जितना चाहो दस बीस हजार हम से ले लो। हमारा और काम ही क्या है—रुपया देना या लेना।

गिरिधर—(हाथ जोड़कर) अनेक धन्यवाद हैं आपको। (इधर-उधर दौड़ता है) क्या खातिर करूँ मैं आपकी? सरोजनी! सरोजनी! कहाँ छिप

गई तुम ? एक-एक गिलास औरा चाय का ही लातीं ।

सर विवेकजी—कोई परवा नहीं अब नए बंगले में ही खातिर हो जायगी ।

गिरिधर—रायसाहब तो मैं तो आज ही आपके बंगले में आने को तैयार हूँ ।

सेठ मूलजी—बड़ी खुशी से ।

गिरिधर—और (बैंकवाला की तरफ हाथ जोड़ता है) ।

सेठ सुरजोमलजी—हाँ-हाँ मैं अपने एजंट को लिख दूँगा आपको जितना रुपया चाहिए लिखा-पढ़ी कर ले लीजिए । अब आपका रुपया आ रहा है तो उसके लायक आपको अपना रहन-सहन जल्दी-से-जल्दी बना ही लेना चाहिए ।

सर विवेकजी—थैंक यू !

[तीनों जाते हैं, गिरिधर बड़ी नम्रता से हाथ जोड़ता हुआ उन्हें दरवाजे तक पहुँचाता है ।]

गिरिधर—(फिर नाचता है) धन्-धन्-धन् धन् ! टू-टू-टू ! धन्-टू, धन टू धन्-धन् टू टू-टू !

सरोजनी—न करती हूँ आस-पड़ोसी क्या कहेंगे ?

गिरिधर—अब कोई कुछ नहीं कह सकता पैसे की कमी सब कुछ कहलवा लेती है और जब पैसा हो जाता है तो इंसान के तमाम अवगुण भी चाँद के धब्बों की तरह से खूबसूरत जान पड़ते हैं । देखो हीरे के निकालने में देखते ही कैसा सारा नकशा बदल गया ! ये शहर के बड़े-बड़े लोग इनकी मोटर कभी इधर से आती थी क्या ? आज मेरी अभ्यर्थना करने आए हैं । चलो राय साहब अपना बँगला दे देने को कह गए हैं । सामान पैक करो । थैंक गॉड ! थैंक गॉड !

सरोजनी—लेकिन कुलियों की मजदूरी !

गिरिधर—सब बैंक से मिल जायगी ।

सरोजनी—लेकिन पहले मेरे जेवर ! मेरे कपड़े ! तभी मैं घर से पैर बाहर निकालूँगी ।

गिरिधर—अच्छा पहले तुम्हारा ही जेवर !

[परदा गिरता है]

तीसरा दृश्य

[बंगले में गिरिधर की बैठक। अप-टू-डेट सजी हुई बैठक, मेज-कुर्सी, सोफा सेट, दरवाजों और खिड़कियों में परदे। कोनों में ऊँची तिपाइयों पर फूल दान और स्टैण्डर्ड रेडियो ग्रामोफोन की कालत में तरह-तरह की सजावट की चीजें। दीवारों पर बढ़िया चित्र। एक कोने में पियानो, वहीं पर बढ़िया रेशमी झालरदार शेडवाला बिजली की बत्ती का ऊँचा स्टैंड। फैशन में पूरी मेम बनी पियानो पर सरोजनी बैठी उँगलियाँ चला रही है पास ही डाइ बैंड में खड़ा हाथ में पाइप का धुआँ छोड़ता हुआ गिरिधर खड़े सुन रहा है। परशुराम आते हैं।]

परशुराम—जय हो दाता की जय हो!

[सरोजनी झल्लाकर हाथ रोक लेती है]

परशुराम—वाह! बहुत बढ़िया! विलायती बाजे में यह हिन्दुस्तानी भैरवी क्या उत्तम बजा रही हो। मैं विचारक हूँ हिन्दुस्तानी बाजे में अँगरेजी भैरवी बजाने के लेकिन तुमने हाथ रोक क्यों लिया?

गिरिधर—अभी तो सीखना शुरू किया है।

सरोजनी—(पियानो पर से उठ जाती है)।

परशुराम—बड़ा बढ़िया बंगला है क्या आपने खरीद लिया?

गिरिधर—नहीं अभी तो किराए पर लिया है।

परशुराम—आपको तो इसे मोल ले लेना चाहिए था किराए पर लेना आपकी शोभा के विरुद्ध है।

गिरिधर—होते-होते वह भी हो जायगा महाराज।

परशुराम—हाँ आपने कहा था। आप बड़े धर्मात्मा हैं तभी तो इतनी माया आपके पास अपने-आप आकर जमा हो गई।

गिरिधर—मैंने क्या कहा था पंडित जी?

परशुराम—(सरोजनी से) आप भी चुप हो गईं क्या?

[सरोजनी भी कुछ याद करने लगती है]

परशुराम—अभी आपने धर्मशाला और अनाथालय के लिए कुछ चन्दा देने

को कहा था।

गिरिधर—लेकिन अभी जरा लाचारी है।

परशुराम—हैं! लाचारी कैसी? आपकी सारी कायापलट हो गई! चाय-नमीचा बंगला-फरनीचर नौकर चाकर छड़ी-कोट सूट-बूट मोटर रेडियो क्लब-सिनेमा—सभी कुछ तो आपके मौजूद है—फिर लाचारी कैसी? मेरी समझ के बाहर की बात।

गिरिधर—सभी पंडितजी यह सब उधार क्रेडिट लोन प्रोनोट इन्स्टालमेंट वाले और विश्वास का मामला है। वादा है मेरा। आप विश्वास कीजिए, दूंगा।

परशुराम—लेकिन अभी क्यों नहीं?

सरोजनी—अभी रुपया नहीं आया है।

परशुराम—दस-बारह दिन तो हो गए।

गिरिधर—बस अब आता ही होगा।

परशुराम—तार भी नहीं आया? तार को तो फौरन ही आ जाना चाहिए था।

गिरिधर—तार भी आता ही होगा कहीं कुछ पते में गड़बड़ हो गई होगी।

परशुराम—हाँ जी शहर के अखबार में तुम्हारा नाम भी छप गया फोटो भी छप गई फिर शक करने की क्या आवश्यकता है? अब आता ही होगा तार भी और रुपया भी। या तार में ही रुपया आ जाय। पलटू कहाँ है?

गिरिधर—मैंने बता तो दिया था आपको हम उसे निकाल चुके।

परशुराम—उसके भाग्य में कहाँ होती यह कोठी? अच्छा शीघ्र ही आऊँगा—खूब बड़ा चेक काटकर रख देना मेरे लिए। (चला जाता है)।

गिरिधर—(बड़ी गम्भीरता से माथा पकड़ सोफे में बैठ जाता है, पाइप मेज पर रख देता है) पंडित परशुराम ने पलटू का नाम लेकर मन में भारी शंका का राक्षस खड़ा कर दिया।

सरोजनी—दिल तो मेरा भी धड़कने लगा है आपको कैसी शंका हो गई?

गिरिधर—पहले तुम बताओ।

सरोजनी—भरत ने कोई भूल तो नहीं की ?

गिरिधर—लेकिन हमेशा वही तो हमारे कूपन और मनीआर्डर भेजता था।

सरोजनी—और तुम्हारे हलों में दर्जनों भूलें हो जाती थीं, उसके भेजने में कभी कोई भूल नहीं हुई।

गिरिधर—कोई उत्साह बढ़ानेवाली बात करो सरोजनी। पियानो बजाओ उसमें ध्यान बँट जायेगा।

[सरोजनी पियानो पर बैठकर उसकी चाबियों के ऊपर उँगलियाँ दौड़ाने लगती है।]

गिरिधर—(सरोजनी के पास जाकर खड़ा होता है) कोई अच्छा गीत बजाओ। मचल रही हैं तुम्हारी उँगलियाँ इन परदों पर !

[एक नौकर बड़े अदब से अखबार लाता है]

नौकर—सरकार यह अखबार आया है।

गिरिधर—(उसके हाथ से अखबार लेकर सोफे पर बैठ जाता है और अखबार पढ़ने लगता है)।

नौकर—(जाता है)।

गिरिधर—(अखबार पढ़ते-पढ़ते चौंक पड़ता है) सरोजनी !

सरोजनी—(पियानो छोड़ गिरिधर के पास आती है) क्या हो गया ?

गिरिधर—(दोनों हाथों में अखबार पकड़े हुए कमरे में इधर-उधर दौड़ता है) मार डाला ! मार डाला !

सरोजनी—क्या हो गया ?

गिरिधर—इनाम नहीं मिला ! (अखबार फेंक देता है)।

सरोजनी—तुम तो कहते थे एक भी गलती नहीं है।

गिरिधर—हल बिलकुल ही सही है। मिलाओ। (अखबार उठाकर पढ़ता है)।

सरोजनी—(हल की नकल उठाकर उससे मिलाने लगती है)।

गिरिधर—(रोने के स्वर में) धन्-धन्-धन्-धन् ! टू-टू-टू ! धन्-टू ! धन् धन् ! टू-टू-टू !

सरोजनी—इस तो बिलकुल सही है। फिर बात क्या हो गई ?

गिरिधर—मनहू ने पटका पलट दिया !

सरोजनी—कैसे ?

गिरिधर—वह दस रुपए और उसका मनीआर्डर कमीशन दोनों खा गया।

सरोजनी—उसने रसीद तो दी थी।

गिरिधर—वह सिर्फ रजिस्ट्री की थी।

सरोजनी—मनीआर्डर की रसीद तो वहीं को भेज देनी पड़ती है न ?

गिरिधर—लेकिन उसने नहीं भेजी।

सरोजनी—तो अब क्या होगा ?

गिरिधर—यही मेरा भी सवाल है अब क्या होगा ?

सरोजनी—और अब तुम उस गली वाली के मकान में भी नहीं जा सकते उसमें कोई दूसरा किरायेदार आ गया है।

गिरिधर—वहाँ जाकर भी तो इन कर्जदारों से पीछा नहीं छूट सकता।

सरोजनी—मैं पूछती हूँ फिर कहाँ जायेंगे ?

गिरिधर—गाँव में खेती करेंगे अधिक अन्न उपजायेंगे।

सरोजनी—और यहाँ ?

गिरिधर—दिवालिए की दरख्वास्त।

सरोजनी—मैं पहले ही आपसे कहती थी। तृष्णा न बढ़ाइए। झोंपड़ी में बने रहिए, बंगलों के सपने न देखिए।

गिरिधर—तो मेरा क्या कसूर ! इन लोगों ने मुझे उधार क्यों दे दिया ?

सरोजनी—उधार देनेवाले का नहीं कसूर माँगनेवाले का है। और कसूर तुम्हारा ही है, मैं बराबर तुमसे कहती रही।

गिरिधर—कसूर सच पूछो तो मिस्टर सम्पादक का है, उसने क्यों मेरी फोटो और मेरे इनाम की खबर अखबारों में छपा दी ? इसी से तो ये तमाम लोग धोखे में पड़ गए और मुझे उधार मिल गया।

सरोजनी—मैं नहीं मानती यह बात।

गिरिधर—तो फिर वह गीतामाता और धर्मशास्त्र के पंडित जी हैं जिन्होंने

मिस्टर बवासकर को सोफे में डाल दिया।

सरोजनी—मैं कहती हूँ तुम अपना कसूर क्यों नहीं समझते ?

गिरिधर—मेरी एक भी गलती नहीं पूरे सोलहों आना मेरे सही थे गलती है पलटू की जो मनीआर्डर का रुपया आ गया और बिना मनीआर्डर की रसीद के मेरी एंट्री डबलसिंग हो गई। (माथे पर हाथ मारकर फिर सोफे पर गिर जाता है। नौकर को आता हुआ देख चेहरे पर बनावटी खुशी पहनकर खड़ा हो जाता है)।

नौकर—(आकर) सरकार! बैरा खानसामा माली ड्राइवर, चपरासी आया—सभी लोग अपनी-अपनी तनखा के लिए कह रहे हैं।

गिरिधर—ओह यस! अकाउंटेंट साहब आए या नहीं ? पे-शीट बनाकर लाने को कह दो उनसे।

नौकर—जो हुक्म। (जाता है)।

सरोजनी—लेकिन तुम उनको तनखा कहाँ से दे दोगे ?

गिरिधर—बेवकूफों को अब तक पता नहीं चल पाया—ये मेरे चेक का आनर करेंगे ही।

[एक मोटी फाइल बगल में दबाए अकाउंटेंट का आना]

अकाउंटेंट—पे-शीट तैयार है सरकार।

गिरिधर—यह मोटी फाइल किसकी है ?

अकाउंटेंट—दर्जी, ड्रेपर, वाशिंग कंपनी, फर्नीचर मार्ट, अंडेवाला, रोटीवाला, फलवाला, ग्रोसर, हलवाई, बनिया वगैरह-वगैरह के बिल हैं ये सब।

गिरिधर—ऑल राइट कुल टोटल कितना है ?

अकाउंटेंट—तीन हजार पाँच सौ बहत्तर रुपए आठ आने। यह चेक बुक है। (चेक बुक देता है)।

गिरिधर—(चेक लिखकर अकाउंटेंट को देता है) लो सबका रुपया दे दो।

[अकाउंटेंट कागजात लेकर जाता है]

सरोजनी—चेक लौट आया हो ?

गिरिधर—रुपए मिल भी गए तो कितने दिन तक यह भेद छिपा रह सकेगा ? इसलिए चलो सरोजनी चल दें अभी ।

सरोजनी—कहाँ ?

गिरिधर—आकांक्षा आशा वासनाओं बनावट और विलास की इस दुनिया से कहीं दूर ! जाओ कोई सादी साड़ी पहन आओ । (सरोजनी जाती है । गिरिधर एक बस्ता खींचकर बगल में लपेट लेता है । कोट-पैंट उतारकर फेंक देता है) ।

[बाहर से द्वार खटखटाने की आवाजें]

पहली आवाज—मोटर की किस्त दीजिए ।

दूसरी आवाज—बीमे की किस्त दीजिए ।

तीसरी आवाज—रेडियो की किस्त दीजिए ।

चौथी आवाज—पियानो की किस्त दीजिए ।

गिरिधर—(इधर-उधर परेशान होकर दौड़ता है । फिर यही आवाजें दुहराई जाती हैं) सरोजनी जल्दी करो ।

सरोजनी—(एक सादी साड़ी पहनकर आती है) ।

गिरिधर—(उसका हाथ पकड़कर) चलो गुनहगारों की तरह भाग चलें । कामनाओं को धता देने का यही तरीका है ।

[दोनों जाते हैं । डा० मिलिकजी, सेठ सुरलेखजी और सेठ मूलजी आते हैं ।]

सेठ सुरलेखजी—गिरिधरजी ! अजी गिरिधरजी कहाँ गए ?

डा० मिलिकजी—रोज टालते ही जा रहे हैं न बंगले का एग्रीमेंट करते हैं, न कुछ पेशगी ही देते हैं ।

सेठ मूलजी—फिकर क्या है ? इनाम का रुपया आते ही दे देंगे । (अखबार पर नजर पड़ती है) रिजल्ट आया तो नाम पढ़ता है इसमें । (अखबार पढ़कर) एक लाख का बंपर ! ऑल करेक्ट कोई नहीं दो गलतियों पर चार आदमियों में बँट गया इनाम । लेकिन इसमें भी गिरिधर का कहीं नाम नहीं ।

सर मिसेफजी—लेकिन अखबार में किसी ने इन्हें एप्रिल फूल बना दिया। फोटो छापकर।

सेठ मूलजी—लेकिन मूरख तो हम बने।

सेठ फुरसोतजी—गिरिधर जी! अजी गिरिधरजी!

[कोई जवाब नहीं मिलता। परदा गिरता है]

पात्र

प्रद्योत
अवन्ती के महाराज

वासवदत्ता
अवन्ती की राजकुमारी

उदयन
वत्सराज

कुबड़ी
अवन्ती की एक दासी

प्रहरी, मन्त्री, गुप्तचर, दूत और सैनिक

देश—अवन्ती का राजभवन और शिप्रा का तट

काल—एक मास

बन्दी—आपके मतलब की सच्चाई बता चुका।

प्रद्योत—इसकी अंगा-झोरी लो।

गुप्तचर—(उसके अंग और वस्त्रों में खोलकर) कुछ नहीं महाराज केवल हमारे ही राज के दो-चार कार्षापण हैं इसकी अंटी में।

प्रद्योत—इसे ले जाकर अभी बन्दी-गृह में डाल दो कि यह सोच-विचारकर कल प्रभात समय तक सच्चाई प्रकट कर दे। अगर यह अपनी ही हठ पर जमा रहा तो कल को इसे तब तक कोड़े लगाए जायें जब तक यह अपने स्वामी का नाम न बोल दे। इसकी इस वीणा को राज-भंडार में जमा कर दो।

[गुप्तचर बन्दी को लेकर जाता है एक दूत आता है]

दूत—महाराज की जय हो! वत्सराज उदयन बन्दी कर लिए गए।

प्रद्योत—यह कठिन साधना कैसे इस शुभ समाचार में सिद्ध हो गई?

दूत—महाराज आप इसे हमारा कौशल कहिए या उसकी दुर्बलता।

प्रद्योत—दोनों बातें बताओ।

दूत—आप जानते ही हैं उदयन को शिकार खेलने का बहुत बड़ा व्यसन है। हमने एक बनावटी हाथी बनाकर संध्या समय उसके शिविर के पास जंगल में छोड़ दिया। हाथी के भीतर हमने अपनी सेना के चुने हुए वीर छिपा दिए। दूर से जब हाथी के दर्शन किए तो उदयन एक-दो साथियों को लेकर उसके पीछे घर-संधान कर चल पड़ा।

प्रद्योत—इतनी सरलता से फँस गया वह तुम्हारे जाल में?

दूत—मनुष्य के पैरों से चलकर वह हाथी जंगल में बहुत दूर पहुँच गया। रात के बढ़ते हुए अँधेरे में वत्सराज को हमारी चतुराई नहीं दिखाई दी। जब वह अपनी छावनी से बहुत दूर निकल गया तो उस हाथी का अंग-प्रत्यंग टूट-टूट कर हमारे सैनिकों में बदल गया। हमें उस अभिमानी को बन्दी बनाते कुछ भी देर न लगी।

प्रद्योत—कहाँ है वह?

दूत—हमारे साथ। आज्ञा हो तो यहीं उपस्थित करें।

प्रद्योत—अवश्य।

[तुरत जाकर एक सैनिक के हाथों में बन्दी वत्सराज को लेकर आता है]

उदयन—(बड़ी नकीली दृष्टि से प्रद्योत को देखता है)।

प्रद्योत—इन बंधे हाथों पर तुम्हारी दृष्टि सीधी नहीं है अभी ?

उदयन—कारण ही क्या है ? धोखे से बांध लिया गया हूं क्या यही तुम्हारी वीरता और राजनीति है ? क्यों मेरी दृष्टि सीधी हो ?

प्रद्योत—और तुम्हारी वीरता तथा राजनीति यही है कि तुम बिना प्रयोजन ही मेरे राज्य की सीमा दबाने चढ़ आए ?

उदयन—कौन कहता है ? मैं आखेट के लिए आया हूं और वे गिरिपर्वत किसी के अधिकार में नहीं है। किसी सिपाही ने झूठा समाचार दे दिया होगा।

[एक सैनिक वही वीणा लेकर आता है]

सैनिक—महाराज यह वीणा अभी राज भंडार में जमा होने आई थी। भंडारी ने इसे ध्यान से देखा तो इसमें महाराज उदयन का नाम खुदा पाया। उन्होंने इस सूचना के साथ यह आपकी सेवा में भेजी है।

प्रद्योत—(वीणा में नाम पढ़कर) हूं, यह तो स्पष्ट ही है। इसके स्वामी भी प्रत्यक्ष खड़े हैं। (उदयन से) यह वीणा तुम्हारी है ?

उदयन—और किसकी हो सकती है ?

प्रद्योत—अब तुम्हारी वीरता की यह दूसरी साक्षी है।

उदयन—इसमें कोई संशय क्यों हो ? अकेले शस्त्र का कौशल ही क्या वीरता है ? आत्म की कला कोई वस्तु ही नहीं ?

प्रद्योत—रात की ओर की भांति वीणा बजाना यही तुम्हारा आत्म है क्या ?

उदयन—क्या मैं छद्मवेश में था या मैंने तुम्हारे सेवकों को घूस दे रखी थी ?

प्रद्योत—तब क्या बन्दी नहीं हो ?

उदयन—लेकिन तुम्हारी प्रत्येक अनीति से निर्भय हूं।

प्रद्योत—क्या अनीति है मेरी ? किसी के प्रासाद में घुसकर रात को वीणा बजाना ही क्या नैतिकता है ? क्यों नहीं तुम्हारा न्याय ही ?

उदयन—मैं कब तुम्हारे प्रासाद में घुसा ?

प्रद्योत—मेरे उपवन में बजाई होगी।

उदयन—रात की शून्यता में गीत बहुत निकट जान पड़ता है।

प्रद्योत—तो मेरे दुर्ग के किसी परकोटे पर चढ़कर ?

उदयन—नहीं राजन् वहाँ भी नहीं।

प्रद्योत—मैं मान लेता हूँ वहाँ भी नहीं। मेरे दुर्ग से दूर ही सही। मेरे राज्य की सीमा के भीतर तो होगी वह जगह ?

उदयन—कदापि नहीं।

प्रद्योत—क्यों नहीं तुम्हारी चतुरता है ? यही स्पष्ट झूठ बोलने पर कमर कस ली तुमने ? उस स्थान का नाम तो बताओ।

उदयन—महाकाल का मंदिर ! राजन् क्या उस पर तुम्हारा अधिकार है ? क्या वह तुम्हारी सीमा के भीतर है ?

प्रद्योत—यह दूसरी झूठ है। वह हमारी भूमि पर है, मेरे पूर्वजों ने उस मंदिर को बनवाया है।

उदयन—भूमि की छाती पर से जो सबके चिता-लेखा को छीन लेता है ऐसा वह महाकाल ! उसके पूर्वजों का जिसने मिटा दिया उसके मंदिर को बनाने का अभिमान क्या भारी विडम्बना नहीं है ?

[प्रद्योत भाल पर हाथ रखकर सोचता ही रह जाता है]

उदयन—किस सोच-विचार में पड़ गए महाराज ! बड़ा कठिन प्रश्न है क्या यह ? वह अभी भी तो सिंहासन में बैठकर न्याय करने का अभ्यासी है। दंड और दान देने वाली मणी से भुजाएँ तुम्हारे लौह-बंधन पहने थक गई हैं। निर्णय का भी है शीघ्र क्यों नहीं देते ?

प्रद्योत—एक शर्त पर तुम्हें मुक्त कर दूँगा मानने को तैयार हो ? तुमने उस आधीरात के संगीत से मेरे दुर्ग के भीतर बड़ी व्याकुलता भर दी है।

उदयन—तो मैं क्या करूँ ? मेरा यह कदापि लक्ष्य नहीं था। मैंने तो केवल महाकाल के गीत में तान दी।

प्रद्योत—पर तुम्हारा वह गीत मंदिर के झरोखों और गवाक्षों से छनकर

मेरे प्रासाद के वातावरण में व्याप्त हो उठा। बहुतों को इससे जो पीड़ा पहुँची है, उसका उत्तरदायित्व किस पर है ?

उदयन—उनकी दुर्बलता पर।

प्रद्योत—चुप रहो तुम अपराधी हो तुम्हें दण्ड दिया जायगा। सैनिक महाराज के बंधन खोल दो।

[प्रहरी उदयन के बंधन खोल देता है]

उदयन—बंधन खुल गए तो फिर दण्ड कैसा ?

प्रद्योत—लौह बंधन से अधिक भी तो कुछ बंधन हैं तुम नहीं जानते ?

उदयन—जानता हूँ।

प्रद्योत—वही शब्दों के बंधन तुम्हें पहना दूँगा प्रतिज्ञा करोगे ?

उदयन—कैसी प्रतिज्ञा ?

प्रद्योत—यही कि तुम मुझे अपनी यह संगीत की कला सिखा दोगे।

उदयन—सिखा दूँगा।

प्रद्योत—इतनी सरलता से तुम मान गए ?

उदयन—मानना ही पड़ता है। कला के विस्तार का सहायक होने पर ही कलाकार की कला बढ़ती है।

प्रद्योत—जब तक नहीं सिखा सकोगे तब तक तुम्हें कारावास करना होगा। प्रस्तुत हो ?

उदयन—हूँ।

प्रद्योत—कितने दिन में सिखा सकोगे ?

उदयन—तुम्हारी आकुल पिपासा उत्कट इच्छा और अबाधित कर्म पर यह निर्भर है।

प्रद्योत—लोग कहते हैं कला मनुष्य के जन्मजात होती है।

उदयन—मनुष्य के ज्ञान और कर्म का योग क्या नहीं कर सकता ? वह सोए हुए संस्कारों को ही नहीं जगा सकता नए की सृष्टि भी कर सकता है। लेकिन इसमें एक बड़ी आवश्यकता है, उसके न होने पर कुछ भी हो कुछ नहीं हो सकता।

प्रद्योत—वह क्या है ?

उदयन—अहंकार का त्याग।

प्रद्योत—वह कैसे छूट सकता है जीवित रहते ?

उदयन—गुरु की कृपा से।

प्रद्योत—गुरु कौन है ?

उदयन—जिससे तुम विद्या सीखोगे।

प्रद्योत—तुम ? गुरु ?

उदयन—हाँ बिना मुझे गुरु माने मुझसे दीक्षा लिए तुम्हें इस विद्या का रहस्य प्राप्त न हो सकेगा।

प्रद्योत—मैं क्यों इस अंधविश्वास का पालन करूँ ?

उदयन—बिना गुरु की स्थापना के मानस को विनय और शील की उद्भावना न मिलेगी बिना विनय के भावना में समता और स्थिरता न आयेगी बिना इनके विद्या नहीं आती यह एक अटल और अकाट्य सत्य है।

प्रद्योत—हम दोनों के बीच में राजनैतिक स्पर्धा है। तुम्हें गुरु बना देने का अर्थ मेरे राजत्व का पतन है।

उदयन—राजन् ऊपर की भूमि इस मिट्टी के धरातल से बहुत ऊपर की वस्तु है। वहाँ वत्स और अवन्ती की सीमाएँ नहीं मिलती हैं न कोई वहाँ से राजस्व ही वसूल कर सकता है।

प्रद्योत—कुछ भी हो यह मुझे स्वीकार नहीं।

उदयन—तब तुम्हें इस कला का लालच छोड़ देना होगा।

प्रद्योत—वह भी नहीं छोड़ सकता। बुद्धि द्वारा हम प्रत्येक कठिनाई के भीतर से मार्ग निकाल सकते हैं। मैंने एक उपाय सोच लिया है। हमारे राज भवन में एक कुबड़ी दासी है। उसके बड़ी प्रबल संगीत की धारणा है। वह एक दो बार ही सुनकर किसी भी गीत को कंठस्थ कर लेती है। वह तुम्हारे सारे गीत के कोष को सोख लेगी। हो उसे सिखाने को तैयार ?

उदयन—अगर वह मुझे गुरु बनाने को प्रस्तुत हो तो।

प्रद्योत—वह प्रस्तुत होगी।

उदयन—तो मुझे कोई भी आपत्ति नहीं।

प्रद्योत—सैनिक जाओ दासी कुब्जी को बुला लाओ अंतःपुर से। (सैनिक जाता है) हा-हा! (विजय का अट्टहास करता है) और जब वह तुम्हारी विद्या के सारे रहस्य छीन लेगी तभी मैं बड़े विश्वास और अवकाश से उसके माध्यम द्वारा अपनी कला प्रकाशित कर दूँगा। क्यों महाराज?

उदयन—इससे मेरा कुछ नहीं बिगड़ता।

प्रद्योत—यह राजवेश उतारकर तुम्हें एक क्रीतदास का जामा पहनना होगा। ये वस्त्राभूषण राज-भंडार में सुरक्षित रहेंगे और तुम्हारी विदाई के दिन तुम्हें आदरपूर्वक भेंट किए जाएँगे।

उदयन—मुझे स्वीकार है।

प्रद्योत—तुम्हारी सुविधा का ध्यान रखा जायगा। तुम किसी के साथ मतलब के बाहर की बातचीत न कर सकोगे। दिन-रात तुम्हारे ऊपर प्रहरियों की दृष्टि का बंधन रहेगा। जितनी जल्दी तुम इस कुब्जी को अपनी कला सिखा सकोगे उतने शीघ्र तुम्हें मुक्त कर दिया जायगा।

उदयन—इस प्रकार मेरे बंधन की अवधि मेरे प्रयास पर ठहर गई।

प्रद्योत—और अगर तुमने कभी किसी संकेत से अपनी सेना प्रजा या सेवकों को यह भेद दिया तो फिर तुम्हें आजन्म कारावास में बाँध दिया जायगा। (सैनिक के साथ घूँघट काढ़े कुब्जी आती है) यही है वह कुब्जा। (कुब्जी से) इन्हें गुरु बनाकर तुम्हें कल से इनसे संगीत सीखना होगा।

[कुब्जी अपना सिर हिलाती है]

प्रद्योत—सैनिक इन्हें अभी कुछ देर बिना बंधन के कारागार में रख दो। फिर इनके योग्य उचित प्रबंध करा दिया जायगा।

[सैनिक उदयन को लेकर जाता है]

कुब्जी—(घूँघट हटाकर) महाराज मैं अंतःपुर की बूढ़ी मर्दन करनेवाली मुझे संगीत सिखाकर क्या लाभ होगा?

वासवदत्ता—(आती है) महाराज संगीत तो मैं सीखना चाहती हूँ।

प्रद्योत—तुम्हारे ही लिये तो यह बाहरी दिखावा करना पड़ रहा है।

कुबड़ी—लेकिन बुरे दिनों के फेर से बड़े-बड़े मानी-मानी वीर-धीर, पृथ्वी विहान दासों की हाट में बिक जाते हैं। क्या अपनी स्वतंत्रता अपना देश और अपने स्वजन को देने पर उनका सर्वस्व लोप नहीं हो जाता? उनकी आत्मा उस दीनता के ऊपर फिर उठ ही नहीं सकती। लोगों के अपयश-भरे मुखों और घृणा-भरी दृष्टियों के आगे वे माथा उठा ही नहीं सकते।

वासवदत्ता—हाँ लोगों के इसी अत्याचार की प्रतिहिंसा के लिये अवन्ती की राजकुमारी अपने हाथों से उनका सारा कलंक धो देने को तैयार है। फिर उनसे क्रीतदास कहने का किसी को साहस न रहेगा? इतना श्रेष्ठ कलाकार, जिसके स्वर से वायु के प्राणी ही नहीं दस-दिशाएँ भी नाच उठती हैं उसे ऐसा हीन संबोधन देना क्या हमारे पतन की पराकाष्ठा नहीं है?

कुबड़ी—कानों में जो शब्द गए वही होठों से निकल गए।

वासवदत्ता—तुझे सुनाकर कुछ नहीं कह रही हूँ। तू बचपन ही से अंतःपुर की बहु-चेटियों के बीच में रही है। तू ने उनके संसर्ग में वाणी और व्यवहार की अच्छी संस्कृति पाई है। पुन राजाओं की रीति को कौन समझ सकता है? जिस तरह दासी की आड़ लेकर आचा बैठी है परदे के इधर उसी तरह परदे के उस पार क्या कुष्ठ के आगे क्रीतदास की कल्पना नहीं रख दी गई?

कुबड़ी—यह क्यों?

वासवदत्ता—कि एक-दूसरे पर आकर्षित न हों। लेकिन राग आकर्षण का ही अपर नाम है। बिना अनुराग के कोई किसी को राग नहीं दे सकता।

[नेपथ्य में भेरी बजती है और शब्द होते हैं—"सावधान! अवन्ती के महाराज पधारते हैं। मार्ग से हट जाओ। उनके आदर के लिये माथा विनत कर हाथ जोड़ खड़े हो जाओ। कुबड़ी और वासवदत्ता दोनों झट पट से चली जाती हैं।]

[परदा उठता है]

तीसरा दृश्य

[अवन्ती के अन्तःपुर का एक प्रकोष्ठ। सामने द्वार पर एक परदा पड़ा है। प्रद्योत और वासवदत्ता बातें कर रहे हैं।]

प्रद्योत—क्यों वासवदत्ता, वह वत्सराज बिना किसी कपट के तुम्हें संगीत की शिक्षा दे रहा है न ?

वासवदत्ता—हाँ महाराज।

प्रद्योत—लेकिन बाहर नगर के राजकर्मचारी कुछ विचित्र बातें कहते हैं। प्रारम्भ में ही यह निश्चय कर लिया गया था कि तुम्हारे बीच में गद्य में कोई बात नहीं की जायेगी।

वासवदत्ता—पर वे कहते हैं बिना गद्य की सहायता के पद्य तक नहीं पहुँचा जा सकता और बिना पद्य की सहायता के संगीत तक। गद्य में से ही तो पद्य आविर्भूत हुआ है फिर महाराज ने क्यों उसे निषिद्ध किया है ?

प्रद्योत—गद्य मनुष्य की सहज अभिव्यक्ति है इसलिए उसमें उसकी विकार युक्त भावनाएँ बड़ी सरलता से स्थान ग्रहण लेती हैं।

वासवदत्ता—क्यों पद्य में ऐसी बात नहीं है ?

प्रद्योत—पद्य में काव्य की भावनाएँ समावेशित होती हैं। काव्य मनुष्य को जीवन की सात्विकता का संदेश देता है इसलिये उसको क्षुद्र भावनाएँ नहीं व्यापतीं। गद्य बिना सोचे-विचारे ही प्रकट हो जाता है इसीलिये पद्य के सामने उसकी तुच्छता है।

वासवदत्ता—महाराज के अन्धविश्वास को मुझे अपना विश्वास बनाना पड़ा बहुत दिन तक। पर अब यह नितान्त असम्भव है। मैं अपनी शंकाओं को किसी प्रकार काव्यबद्ध नहीं कर सकती।

प्रद्योत—शंका भावना की क्षुद्रता है उसे ऊँचा उठाओ तो वह शंका न रह जायगी। प्राणों में दंभ के स्वरूप प्रकट करो उसका उपयोग ही नहीं वह मन का मैल है।

वासवदत्ता—मैल मनुष्य की इतनी दुर्बलता नहीं है जितना उसका रहना

उदयन—(वीणा में स्वर देकर) जिस पर प्राण ठहर जाय वही स्वर है। स्वर के सिद्ध हो जाने पर सप्तक अपने को स्वयं ही घेर लेता है। सप्तक स्वर का ही विस्तार है। सा ऽऽऽऽ, इसे सा मानकर हो तो प ऽऽऽ—यह पंचम है। बिना सा को स्थिर किए सप्तक के किसी दूसरे स्वर का अस्तित्व नहीं है। तुम सुन रही हो न? (भीतर से कुछ उत्तर नहीं मिलता। उदयन कुछ देर वीणा बजाता ही रहता है)।

[फिर कई भेरियाँ बज उठती हैं। एक दूसरा सैनिक आता है]

दूसरा सैनिक—(पहले सैनिक से) ये भेरियाँ बज रही हैं, सुनते हो न? दुर्ग के आमुख पर सारी सेना के एकत्र होने की आज्ञा है। तुम भी वहीं जाओ। तुम्हारे कर्तव्य को सम्भालने मैं आया हूँ यहाँ।

[पहला सैनिक दौड़कर चला जाता है। दूसरा उसकी जगह आकर खड़ा हो जाता है।]

उदयन—(वीणा बजाते हुए इस परिवर्तन को लक्ष करता है)।

दूसरा प्रहरी—क्यों जी तुम सिखाए ही जा रहे हो, या कोई सीख भी रहा है?

उदयन—(आश्चर्य से उसकी ओर देखकर) तुम्हारे स्वर में—

दूसरा प्रहरी—वत्सराज उदयन की सेना ने चढ़ाई कर दी है अवन्ती के दुर्ग पर।

उदयन—ऐसा क्यों?

दूसरा प्रहरी—वत्सराज को इस दुर्ग के भीतर बन्दी बनाकर रखा है न अवन्ती के महाराज ने।

उदयन—कौन कहता है?

दूसरा प्रहरी—वत्सराज के अतिरिक्त और सभी कहते हैं। केवल वचन बद्ध होने के कारण वे ही नहीं कहते।

उदयन—कहाँ हैं वे?

दूसरा प्रहरी—तुम भेंट करना चाहते हो उनके साथ?

उदयन—हाँ।

दूसरा प्रहरी—आप को चंचल नहीं करते। अपना काम करो।

उदयन—(परदे की ओर मुँह कर वीणा में स्वर देते हुए) सा ऽऽऽ सुन रही हो न तुम? स्वर मिलाओ सा ऽऽऽ

दूसरा प्रहरी—(उदयन के पीछे पीछे से स्वर मिलाता है) सा ऽऽऽ—स्वर मिल गया?

उदयन—(चौंककर उठ खड़ा हो उसकी तरफ देखता है) है! परदे के उधर जो स्वर था वह स्वर कैसे आ गया?

दूसरा प्रहरी—प्राणों की एकता ही स्वर है वह कहीं आता-जाता है?

उदयन—प्रहरी! तुम्हारा यह छद्म क्यों धारण करना पड़ा?

दूसरा प्रहरी—और अगर तुम महाराज उदयन से मिलना चाहते हो तो मेरे साथ चलो। मुझे सुरंग का गुप्त द्वार ज्ञात है और मेरे पास राज चिह्न है। (अपने हाथ की अँगुली में अँगूठी दिखाता है)।

उदयन—(उसका हाथ पकड़ लेता है। प्रहरी उसे खींच ले जाता है)।

[अगला परदा गिरता है]

चौथा दृश्य

[शिप्रा नदी के निकट एक वन। आगे-आगे हाथ में एक गठरी लिए वही प्रहरी आता है। उसके पीछे वीणा सँभाले उदयन।]

उदयन—शिप्रा नदी के निकट वन में भी आ गए अब हम। कहाँ हैं वे?

प्रहरी—इसी गठरी में हैं। बुलाता हूँ अभी। (गठरी खोलकर उसमें से उदयन का मुकुट वस्त्राभूषण निकालकर उन्हें पहना देता है) क्यों है न यही महाराज?

उदयन—(ध्यानपूर्वक उसे देखता है) और तुम कौन हो?

प्रहरी—तुम कुछ पहनने से अपने प्रकृत रूप में आए हो तो मैं कुछ उतारने

से। (अपने बाहर के प्रहरी के कपड़े उतार देने से उसके भीतर वासवदत्ता प्रकट हो जाती है)।

उदयन—कौन हो तुम ? क्या आशय है तुम्हारा ? कहाँ ले जा रही हो मुझे

वासवदत्ता—मैं कहीं नहीं ले जा रही हूँ तुम्हें। स्वर के जाल में फँसाकर राजन् तुम्हीं अनजाने मुझे यहाँ ले आ रहे हो। जहाँ भी कहें मैं प्रस्तुत हूँ। मेरे मन और प्राण सभी कुछ तुम्हारे चरणों में विसर्जित हो गए।

उदयन—बड़ी प्रभावशालिनी जान पड़ती हो तुम।

वासवदत्ता—लेकिन तुम्हारे स्वर के शर से बिद्ध पड़ी—तुम्हारे चरणों की शरण हूँ। मेरे जीवन-मरण के सूत्रधार मैं अपना स्वामी बना चुकी तुम्हें।

उदयन—लेकिन हमारे बीच में कोई दूसरा सम्बन्ध स्थिर हुआ है। उसके विपरीत जो-कुछ तुम बोल रही हो वह सर्वथा हम लोगों के लिए अशोभन है।

वासवदत्ता—और कौन-सा सम्बन्ध ?

उदयन—गुरु और शिष्या का। हम दोनों के बीच में पूजा का बन्धन है, प्रेम का नहीं।

वासवदत्ता—पूजा का बन्धन कैसे ? तुम्हारी शिष्या तो वह कुबड़ी है।

उदयन—मैं तो समझता था तुम ही मेरे सामने घूँघट बढ़ा अपनी कमर टेढ़ा कर कुब्जा बन जाती थीं क्योंकि स्वर वही है तुम्हारा।

वासवदत्ता—नहीं तुम्हें गुरु बनाने वाली वह कुब्जा दूसरी है और तुम से विद्या सीखने वाली मैं दूसरी। तब मेरा पाणि ग्रहण कर लेने में तुम्हें क्या आपत्ति है ?

उदयन—तुमने जो विद्या मुझसे प्राप्त की है उसे तुम इस प्रकार प्रेम के प्रदर्शन करने के कारण सँभाल कर न रख सकोगी।

वासवदत्ता—कोई चिंता नहीं यदि गायक प्राप्त हो जाय तो फिर गीत के जो जाने की मुझे कोई चिंता नहीं है।

उदयन—जब यह राजा एक भीलराज के वेश में छिपा था तब क्या तुम्हारी ऐसी ही प्रीति थी ?

वासवदत्ता—और नहीं तो क्या ?

उदयन—मेरे राजा होने का भेद किसने दिया ?

वासवदत्ता—संशय पहले ही था फिर एक दिन जब राजदरबार में तुम्हारे इन वस्त्राभूषणों को देखा, इसमें तुम्हारे नाम से अंकित इस अंगूठी ने तो सारे संदेहों का निराकरण कर दिया। (उसे अंगूठी दिखाकर) यही है न तुम्हारी अंगूठी ?

उदयन—हाँ मेरी ही है। लेकिन बिना अनुमति के किसी की अंगूठी को पहन लेना क्या अत्याचार नहीं है ?

वासवदत्ता—प्यार में कुछ भी अत्याचार नहीं है।

उदयन—यह तुम्हारे स्नेह की वेदना है। एक राजा होने के कारण उदयन के अनेक उत्तरदायित्व हैं। वह चाहे जिससे प्रेम नहीं कर सकता और न चाहे जो कोई उसको प्रणय के बन्धन में बाँध सकती है।

वासवदत्ता—मैं तुम्हें कारावास के कूप से बाहर निकाल लाई हूँ राजन् !

उदयन—मेरी दासता कल्पित थी लेकिन तुम्हारा यह दासीत्व ?

वासवदत्ता—(सिर से पैर तक काँप उठती है) मेरा कैसा दासीत्व ?

उदयन—जिस तरह एक दास के वस्त्र पहनकर उदयन ने दुर्ग के भीतर प्रहरियों को धोखा दिया उसी प्रकार कोई भी दासी राजसी वस्त्र पहन कर उसे धोखा दे सकती है।

वासवदत्ता—मैं अवन्ती की राजकुमारी वासवदत्ता हूँ। इतने संकटों के बीच से तुम्हें बाहर निकाल लाने का साहस किस दासी को हो सकता है ? यह देखिए मेरे नाम की अंकित मुद्रिका मेरी अंगुली में !

उदयन—मुद्रिका कोई साक्षी नहीं ! मेरी अंगूठी पहनकर भी तो तुम किसी के सामने उदयन बन सकती हो।

वासवदत्ता—तुम्हें साक्षी दूँगी। यहाँ अभी हम दोनों के पकड़े जाने का भय है। क्षिप्रा के उस पार चलो राजन्।

उदयन—चलो। (दोनों जाते हैं)।

[परदा उठता है]

पात्र

रामनाथ
एक किराएदार

रुक्मिणी
उसकी पत्नी

मुन्नी
उसकी लड़की

रामदेई
मकान-मालकिन

जितेन्द्र
उसका लड़का

निरमला
उसकी बहू

बरोमा
अंधे भिखारी के वेश में

स्थान—रामनाथ के सोने का कमरा

काल—दो रातों के बीच में एक पखवारा

भूत-लीला



“हूँ ! ये तो निरुपमा जी हैं।”

पहला दृश्य

[रामनाथ के सोने का कमरा । रामनाथ और उनकी मकान-मालकिन खड़े-खड़े बातें कर रहे हैं । दो दीवारों के सहारे दो चारपाइयाँ बिछी हैं । दो कुर्सियाँ, एक छोटी काठ की मेज भी है । फर्श पर दरी बिछी है, उस पर एक फटा गलीचा । उस पर बैठी रुक्मिणी मुन्नी की चोटी गूँथ रही है ।]

रामनाथ—पिछले सात सालों से मैं आपके इस मकान में रहता हूँ । पहले कभी ऐसा नहीं हुआ ।

रुक्मिणी—रात को भीतर-बाहर जाना हमारे लिये भारी मुश्किल हो गया । रसोईघर में जाते हुए प्राण काँपने लगते हैं । कभी-कभी तो ऐसा भी हुआ है, डर के मारे हम लोग बिना खाए-पिए ही सो गए ।

रामदेई—ऐसा होना तो नहीं चाहिए । बड़े आदमियों को उपवास रखने की भी आदत होती है । यह बिचारी छोटी-सी मुन्नी इसे भूखे पेट कैसे आई होगी नींद ?

रुक्मिणी—अगर किसी दिन चिमटा लाने की याद न रही तो अंगुलियाँ जल जाती हैं नमक भूल जाए तो फीकी तरकारी खानी पड़ती है, पानी कम पड़ गया तो प्यासे ही रहकर और हाथ रूमाल में पोंछकर रह जाना होता है । क्या करें ? कुछ बुद्धि काम नहीं करती ।

रामदेई—मेरे भी कुछ समझ में नहीं आया सच्ची तो बात यही है ।

रामनाथ—रात को इसी कमरे में रसोईघर भी बनाना पड़ गया अब तो आप समझ गई होंगी ।

रामदेई—क्या समझूँ मैं ? मेरे मकान की दीवारें धुएँ से काली पड़ जाएँगी तो मैं एक-दो कनस्तर चूने के पैसा पूँजी लगायें । तुम्हारे कपड़े बिस्तर, दरी गलीचे में कोयला-चिनगारी पड़ जायगी तो वह खेद कैसे भरेगा ?

रुक्मिणी—जैसे भी भरेगा देखा जायगा । आप थोड़े देती हैं ।

रामनाथ—वैसे तो मैं पढ़ा लिखा हूँ। मैंने साईंस भी देखी है और मैं गीता-रामायण का भी भक्त हूँ। एक बात आपसे पूछता हूँ। इस मकान में किसी का खून तो नहीं हुआ कभी? यहाँ किसी ने आत्मघात तो नहीं किया?

रामदेई—नहीं जी। पहले हम ही लोग रहते थे इसमें। दो देवर थे मेरे, दो देवरानियाँ। उन सबके बाल-बच्चे भरा-पूरा परिवार चहल-पहल मची रहती थी। बाद को देवर स्थानांतर में चले गए। उन दोनों की बदली हो गई। इसके बाद मेरी तकदीर फूट गई।

रामनाथ—हाँ यही पूछना चाहता था मैं। क्या हुआ तब?

रामदेई—(आँचल से आँसू पोंछती हुई) क्या बताऊँ मेरे इकलौते बेटे विजेन्द्र के पिता का देहान्त हो गया।

रामनाथ—ठीक! अब आई समझ में बात। उनका देहान्त हो गया जाने कैसे?

रामदेई—इसमें शक करने की क्या गुंजायश है? जैसे सबकी मृत्यु होती है, ऐसे ही उनकी भी हुई। बिलकुल स्वाभाविक रीति से। अभी के बाद, मेरी यह उमर होने का आई ऐसी अजीब बात मुझसे किसी ने नहीं पूछी।

रामनाथ—जब सिर पर आ पड़ती है तो पूछना ही पड़ता है। मरते समय उनको एकाएक कोई मानसिक चोट तो नहीं पहुँची? और उनकी अधूरी इच्छाएँ क्या-क्या रह गई थीं?

रामदेई—सारे संसार को स्त्री-पुत्र बन्धु-बान्धवों के वियोग का जैसा दुख सहना पड़ता है, वैसे ही उनको भी सहना पड़ा और इच्छाएँ किसकी पूरी हो जाती हैं जो उनकी हो जातीं?

रामनाथ—सच ही है। उनकी मृत्यु के बाद क्या हुआ?

रामदेई—मेरा लड़का पढ़ने को इलाहाबाद चला गया। यहाँ मैं अकेली ही रह गई। इतने बड़े मकान में क्या करती? फिर उनके स्वर्गवास से कुछ हाथ की तंगी और लड़के की पढ़ाई का नया खर्च भी सिर पर आ पड़ा। देवर लोगों के अपने परिवार में ही काफी जिम्मेदारी थी। मैं पासवाले अपने छोटे से घर में चली गई और इसे किराए पर उठा दिया?

रामनाथ—किराएदारों में से तो किसी के गड़बड़ नहीं हुई ?

रामदेई—यह तुम खुद जानो मुझसे क्यों पूछते हो ?

रामनाथ—क्यों मैं क्या जानूँ ?

रामदेई—तुम्हीं तो यह किराएदार हो।

रुक्मिणी—(चुन्नी से) रिवम कहाँ है ?

चुन्नी—रसोईघर की खिड़की में।

रुक्मिणी—जा ले आ।

चुन्नी—हूँ हूँ ! मैं नहीं जाती।

रुक्मिणी—दिन-दहाड़े क्या हो गया तुझे ? क्यों नहीं जाती ?

चुन्नी—ऊँ ऽ ऊँ ऽ मुझे डर लगती है।

रामनाथ—ऐसी डर पैठ गई इसके मन में रात को सोए में भी बड़बड़ाती है। क्या करूँ कोई राह नहीं सूझती किसी को अगर कुछ हो गया तो ?

रामदेई—देखिए चुन्नी के बाबू जब उनके स्वर्गवास हो जाने पर मेरे ऊपर भारी विपत्ति पड़ी थी तभी मुझे कोई लालच नहीं था। प्रभु की कृपा से अब तो मेरा लड़का अच्छा नौकर हो गया है। किसी को कष्ट देकर मुझे धन की एक पाई भी नहीं चाहिए। तुम्हारा जहाँ मन हो तुम जब चाहो इस मकान को खाली कर चले जाओ। मुझे सात के बाकी किराए की भी कोई परवा नहीं है।

रामनाथ—आपके स्वभाव की इस उदारता को मैं पिछले कई बरसों से पहचानता हूँ। आप उन प्राणियों में से हैं जो अपने सुख के लिये अणु को रंच मात्र तकलीफ देने को तैयार नहीं। आपका ऐसा ज्वलंत उदाहरण पाकर क्यों मुझे उसका अनुकरण नहीं करना चाहिए ? इसलिये मुझे भी सोचना पड़ता है, जो बिचारा दूसरा इस मकान में आएगा उसे भी तो यही आपदा भोगनी पड़ेगी। जब किसी को कष्ट न देनेवाली मकान-मालकिन मुझे मिली है तो मैं भी किसी दूसरे को यहाँ तकलीफ में फँसा देनेवाला किराएदार क्यों बनूँ ?

रामदेई—(रामनाथ से मुँह फिराकर मुँह बनाती है)।

रामनाथ—यों आप क्या बोरिया-बिस्तर बाँधकर फेंक मुझे निकाल

तो आ गए होंगे।

रामनाथ—जी अब कब तक आपको उनकी फिकर हो? पाल-पोस पढ़ा-लिखा शादी-ब्याह करा दिया। अब उनको आपकी चिंता होनी चाहिए। यही तो आजाद होकर बैठने के कुछ दिन हैं कि उस प्रभु का नाम लिया जा सके। ऐसी घटनाओं को देखकर तो और भी ज्यादा भगवान के चरणों में मन लग जाता है।

[दोनों हाथों में एक छोटी-सी परात, परात में कोयलों से भरी सिगड़ी, सिगड़ी पर पतीली पतीली के भीतर आलू और ऊपर तवा उसमें मसालों के डिब्बे लिए रुक्मिणी आती है। दोनों तरफ की कुर्सियों में टिफन बाँधे एक बास्केट में आटा चकला-बेलन झाड़ू कनस्तर कटोरी में तेल लिए मुन्नी आती है। कमरे में धीरे धीरे अंधेरा होने लगता है।]

रामदेई—(दोनों को आता देख ताज्जुब से) यह क्या मामला है?

रामनाथ—(दरी और गलीचे का एक कोना उलटते हुए) मैं कह नहीं चुका हूँ आपसे? चोरबाजारी से हिन्द बचाने के लिये पेट-पूजा यहीं करते हैं।

रुक्मिणी—(खाली किये गए फर्श के एक कोने पर सामान रखती है)।

रामदेई—(बेचैनी दिखाकर) बेटा और बहू मेरी राह देख रहे होंगे। (उठने लगती है)।

रुक्मिणी—(उसका हाथ पकड़कर फिर बिठा देती है) नहीं इसीलिये तो आपको बुलाया है। आज तो आपको यह लीला देखकर ही जाना होगा।

रामदेई—उनसे कुछ कहकर भी नहीं आई। दोनों सोचते होंगे बुढ़िया कहीं नाराज होकर तो नहीं चली गई।

रामनाथ—अब क्या देर है? सूर्य डूब चुका। अंधेरा होने लगा।

रुक्मिणी—बिजली जला दो।

रामनाथ—(बिजली का बटन दबा उजाला कर एक अखबार उठा पढ़ने लगता है)।

रुक्मिणी—(फर्श पर सब चीजें कायदे से जमाती है। एक तरफ सिगड़ी सरकाती हुई) मुन्नी के इस सिगड़ी में दो चार रद्दी कागज जलाकर पंखी

सुलगा है। माँ जी को पराठा सेंककर आज मैं ही खिला दूँगी।

रामदेई—नहीं नहीं मेरे लिये क्या तकलीफ़ करती है।

रुक्मिणी—आ बेटी जल्दी से एक कटोरी में घी निकाल ला ज़रा-सा।

चुन्नी—(सिगड़ी में कुछ कागज डालकर दियासलाई से जलाती है, फिर उस पर पंखा झलती हुई) उस कटोरी में लाई तो हूँ।

रुक्मिणी—यह घी कहाँ है, यह तो तेल है।

चुन्नी—नकली घी से असली तेल क्या बुरा है?

रुक्मिणी—न-जाने क्या बक देती है तू बिना सोचे-समझे? अरी कभी न कभी आज यह दिन आया था। पहले-पहल मैं माँ जी को अपने हाथ से तेल के पराठे खिलाऊँ? राम! राम! मुहल्लेवाले सुनकर क्या कहेंगे?

चुन्नी—अँधेरा हो गया। अब तो तुम्हें भी ऊपर जाने का साहस न होगा।

रामदेई—नहीं न कुछ न खाऊँगी।

रुक्मिणी—नहीं मैं भूखे पेट न जाने दूँगी। कुछ-न-कुछ मुँह जूठा करना ही पड़ेगा। क्या देर लगती है सिगड़ी सुलगते? रसेदार साग तरह के रखे हैं, दूध अभी बना मूँगी आम का अचार और सेब का साग सबसे ऊपर में रखा है। ज़रा-सा भी खा ले बेटी।

चुन्नी—(सिगड़ी में पंखा झलते हुए) माँ मैं कैसे जाऊँ?

रामनाथ—(अखबार अलग रखकर) क्या-क्या लाना है?

रुक्मिणी—एक कटोरी में घी हो पानी की बाल्टी गिलास छोटे थाली और कटोरियाँ।

रामनाथ—और कुछ अच्छी तरह याद कर लो। नमक? चिमटा?

रुक्मिणी—नमक तो ले आई हूँ चिमटे की फिर याद नहीं रही।

रामनाथ—चल बेटी अभी कोई डर नहीं। एक-दो छोटी-छोटी चीजें तू ले आयगी रानी बिटिया बड़ी बहादुर है।

[रामनाथ और चुन्नी रसोईघर की ओर जाते हैं]

रामदेई—सचमुच मैं तकलीफ तो हो गई है तुम्हें बहुत भारी। पर मैं क्या

करूँ जब तुम यहाँ से जाने को तैयार ही नहीं हो तो बड़ी लाचारी है । और यह सब मुझे दिखाकर ही क्या हो जायगा ?

रुक्मिणी—लेकिन हम जायें भी तो कहाँ ? इस मकान में रहते आठ-आठ बरस हो गए । इसके साथ एक तरह की गाढ़ी प्रीति हो गई हमारी । इसे छोड़ कर कहीं जाने को जी नहीं करता । दूसरा मकान और कौन रखा है राह में हमारी ? (खिड़की खुलती है) ।

रामदेई—ढूँढ़ने से भगवान् भी मिल जाते हैं और मालकिनों के हाथ-पैर भी क्या जो नहीं जाते ?

[इसी समय मकान की टीन की छत में पत्थर के गिरने का शब्द होता है और उसी समय चुन्नी बड़ी जोर से रोती है नेपथ्य में ।]

चुन्नी—(नेपथ्य में) मैया ! मैया ! मर गई मैं तो !

रुक्मिणी—(पंखा झलते-झलते उठ खड़ी होती है, दरवाजे पर जाकर इतना चाहती थी कि उसको ठोकर से भयभीत सिगड़ी फर्श पर बिखर जाती । रुक्मिणी घबराकर धड़धड़ाती हुई कोयले बटोरती है) हे भगवान्, किसका क्या बिगाड़ा है हमने ? हाथ जल गया ! चिमटा भी न-जाने कहाँ है ? उधर लड़की के न-जाने क्या हो गया ?

रामदेई—टीन की छत पर क्या गिरा यह ?

रुक्मिणी—क्या बताऊँ जी सारा रोना तो इसी का है ।

[एक हाथ में पानी की भरी बाल्टी और दूसरे हाथ से रोती हुई चुन्नी का हाथ पकड़े रामनाथ आता है ।]

चुन्नी—बड़ी जोर से लग गई ! (एक हाथ से उसने अपना सिर पकड़ रखा है) ।

रुक्मिणी—कहाँ पर लगी ? (उसके टटोलती है) ।

चुन्नी—सिर में ।

रामनाथ—(पानी की बाल्टी एक तरफ रखता है फिर दरवाजा बन्द कर साँकल चढ़ा देता है) ।

[illegible]—इसके तो खून ही खून हो गया सिर में । अब मैं क्या करूँ ?

रामदेई—(उठकर उसके घाव को देखती है) कहाँ रखा है सिन्दूर भर दो घाव में। एक पट्टी बाँध दो।

रामनाथ—डॉक्टर के पास ले जाता हूँ। (लड़की को गोद में उठाना चाहता है)।

मुन्नी—(ज़ोर से रोती है) नहीं डॉक्टर के पास न जाऊँगी मैं।

रुक्मिणी—(फिर टीन पर एक पत्थर और गिरता है) यह सुनो फिर एक पत्थर और गिरा! कहीं न जाओ बाहर। अब के कहीं तुम्हारे सिर में घाव हो जायेगा तो फिर क्या करेंगे हम? (डब्बा खोलकर उसमें सिन्दूर ढूँढ़ती है)।

रामदेई—अभी कैसे?

रामनाथ—छत में गिरकर पत्थर अपनी ताकत गँवाकर फिर आँगन में इसके सिर पर पड़ा तब ये हाल है। अगर सीधा ही इसके ऊपर पड़ता तो फिर राम ही मालिक थे।

रामदेई—यह आया कहाँ से?

रुक्मिणी—(सिन्दूर निकालकर) माँ जी इसी का तो रोना है। क्या बतायें कहाँ से आया है।

मुन्नी—(फिर रोती है)।

रुक्मिणी—चुप रह बेटी।

रामनाथ—बस रोज़ अँधेरा होने पर यही रंग शुरू हो जाता है। कभी-कभी तो लगातार पत्थर बरसने लग जाते हैं। कभी दो-दो चार-चार मिनट के वक़फ़े पर।

रामदेई—कितने बजे तक?

रामनाथ—कोई ठीक नहीं। कभी दस कभी ग्यारह-बारह बजे तक।

रामदेई—सड़क पर कोई बदमाश होगा जिसे भले आदमियों को छेड़ने में आनन्द आता होगा।

रामनाथ—एक-दो दिन भी ऐसी हँसी-मज़ाक़ कोई कर सकता है। रोज़

रोज ऐसा करने वाला अब तक कभी का पकड़ लिया जाता ।

रुक्मिणी—(चुन्नी के घाव में सिन्दूर भरती है) ।

चुन्नी—मर गई । मर गई ।

रामदेई—रो मत बेटी बस अब ठीक हो जायगा । पट्टी बाँध दो अब ।

रुक्मिणी—(एक पुरानी धोती में से लम्बी धज्जी फाड़कर चुन्नी का सिर बाँध देती है) धोती धोवनी ही थी रिवन नहीं तो पट्टी के वक्त में ।

रामदेई—अब सुला दो इसे ।

[रामनाथ उसे चारपाई पर सुला देता है]

रुक्मिणी—बेटी ! भूख लगी है ?

चुन्नी—(रोते-रोते) हाँ अम्मा !

रुक्मिणी—खाने को क्या दूँ इसे ?

रामदेई—जो भी चाहे दे दो । मैं जाती हूँ अब । (बाहर को जाने लगती है) ।

रुक्मिणी—(उसका हाथ पकड़कर) माँ ! ऐसे में कहाँ जाती हो ! तमाम लोग कलंक का टीका हमारे सिर पर रख देंगे ।

रामदेई—इस वक्त तो अब बन्द हो गया ।

रामनाथ—कोई भरोसा नहीं ।

[फिर लगातार एक के बाद दूसरा कई पत्थर छत पर बरसते हैं]

रुक्मिणी—देखा माँ जी कितने भारी भारी पत्थर हैं । अगर किसी के एक भी लग जाय तो पानी न माँगे । यह टीन की छत कब तक सहन कर सकेगी। कब तक सलामत न होगी ? फिर क्या होगा ? मैं तो चार दिन इसी फिकर में घुल गई ।

रामदेई—अरे राम ! यहाँ तो यह मामला है ! मुझे क्या मालूम ? मैं समझती थी दो-चार छोटे-मोटे कंकर गिरते होंगे यहीं के । आस-पड़ोस के किसी लड़के की शरारत होगी । ये एक-एक पंसेरी के पत्थर ! इन्हें तो कोई पहलवान ही इस तरह हवा में उड़ा सकता है ।

रुक्मिणी—तभी क्या विचार है आपका ? (सिपड़ी भुनभुनाना शुरू करती है) ।

रामदेई—यहाँ कैसे रह सकती हूँ मैं ? अपने घर जाऊँगी।

रुक्मिणी—नहीं मेरा मतलब है ये पत्थर कहाँ से आते हैं ?

रामदेई—यह जरूर भूतों की ही लीला है।

रुक्मिणी—कभी और भी कहीं आपने ऐसा होते देखा या सुना है ?

रामदेई—ना भाई और कहीं नहीं देखा-सुना ऐसा जुलम।

[फिर कई पत्थर लगातार छत पर बरसते हैं]

रामदेई—अब कैसे घर जाऊँ मैं ?

रामनाथ—आपको अपने घर जाने की मुश्किल पड़ी है, हम कैसे रहें इसमें ?

रामदेई—मैं तो कह चुकी हूँ न अब भी चाहे छोड़ दो।

रामनाथ—न कहो ऐसा न कहो फिर इस भूतों के डेरे में रहने और आपको किराया देने कौन आएगा ?

रुक्मिणी—(खिचड़ी सुलगाते-सुलगाते) पापी पेट नहीं मानता। (मुन्नी से) क्यों बेटी, कैसा है दर्द ?

मुन्नी—अब तो जरा ठीक है।

रामनाथ—सो जाओ थोड़ी देर।

मुन्नी—नींद नहीं आ रही है।

रामनाथ—क्यों ?

मुन्नी—भूख लगी है।

रुक्मिणी—ठहर जा बेटी अभी तेरे लिये पतली खिचड़ी बना देती हूँ और माँ जी के लिये दो पराठे सेंक—

रामदेई—नहीं नहीं मेरे लिये कोई तकलीफ करने की जरूरत नहीं है। अब तो रुक गई पत्थरों की बरसात।

रुक्मिणी—नहीं कभी-न-कभी आज संजोग पड़ा है, आपको खाकर ही जाना पड़ेगा। मैं अभी आटा गूँधती हूँ। (पति से) घी कहाँ रख दिया ?

रामनाथ—मुन्नी लाई थी कटोरी। बेटी घी कहाँ रख दिया ?

मुन्नी—(रोते-रोते) जब मेरे सिर पर पत्थर लगा तो कटोरी मेरे हाथ

है नीचे गिर गई आंगन में।

रुक्मिणी—(पति से) ला दो न कटोरी।

रामनाथ—मेरा सिर फूट गया तो?

रुक्मिणी—फिर माँ जी के लिये पराठे?

रामदेई—मेरी क्या चिन्ता कर रही हो मैं चली जाती हूँ घर।

रुक्मिणी—नहीं नहीं आप अकेली कैसे जाएँगी? दिन डूबे बाद फिर अंधेरे में आपको कुछ सूझता भी तो नहीं!

रामदेई—टटोल-टटोलकर चली जाऊँगी।

रुक्मिणी—तुम पहुँचा आओ न?

रामनाथ—पत्थर बरस रहे हैं। अंधेरे में घी की कटोरी ही ढूँढ़ लाता हूँ।

रुक्मिणी—माँ जी तो जाने को कह रही हैं।

रामनाथ—मुन्नी के लिये पतली मूली के लिये तो उसकी जरूरत पड़ेगी ही।

रामदेई—तुम तो आपस में ही लड़ने लगे मेरे लिये। मैं चल गई। (चली जाती है)।

रुक्मिणी—(चिन्ता के स्वर में) माँ जी! माँ जी! ठहरिए, ठहरिए! ऐसी अँधेरी रात और पत्थरों की बरसात में?

रामनाथ—(इधर उधर कुछ ढूँढ़ते हुए) ठहरिए ठहरिए, खोपड़ी के बचाव को मैं जरा अपना टोप और छाता भी तो ढूँढ़ लूँ। (बाहर से कोई जवाब न मिलने से द्वार तक जाता है।) चली गईं क्या? (भीतर लौटकर पत्नी से) चली गईं। बाहर का दरवाजा खुला छोड़ गई होंगी। (भीतर का द्वार बन्द कर देता है)।

रुक्मिणी—तो जाकर बन्द कर आओ न। घी की कटोरी भी लेते आना।

रामनाथ—(सिर खुजाकर) तुम्हीं बताओ मैं जाऊँ तो कैसे?

रुक्मिणी—बुढ़िया स्त्री उसको इतना साहस! तुम मर्द होकर बगलें झाँक रहे हो?

रामनाथ—चुन्नी की माँ मैंने पोथी पढ़ी साइंस पढ़ी। डरने का कभी नाम नहीं लिया। भूत प्रेतों की हस्ती में हमेशा अविश्वास किया। जो कभी नहीं सोचा वह आज देखने में आया। जो कभी नहीं पढ़ा उसको आज समझा। है! जरूर है! भूत प्रेत सभी कुछ है इस धरती पर।

रुक्मिणी—चुन्नी बेटी! (खिड़की में पंखा झलते-झलते) नींद आ रही है?

चुन्नी—नहीं माँ बहुत भूख लग रही है।

रामनाथ—मैं अभी लाता हूँ बेटी घी की कचौरी। (दरवाजा खोलने को हाथ बढ़ाता है। सहसा कुछ याद आते ही धोती को खोंसता है और एक-दो बैठक और एक-दो दण्ड करता है एक कोने में। फिर सांकल तक हाथ बढ़ा कर लौट आता है)।

रुक्मिणी—तुम जाओगे नहीं? यह बिचारी बढ़िया अपने घर तक चली गई और तुम्हें यहीं आँगन तक जाने। चुन्नी बिटिया भूखन मर गई निगोड़ी। मैं अभी जाकर—

रामनाथ—(जोर-जोर से पढ़ता है) जय हनुमान ज्ञान-गुणसागर। जय कपीश (दरवाजा खोल दौड़कर चला जाता है)।

चुन्नी—अम्मा इन भूतों को कोई पकड़ क्यों नहीं सकता?

रामनाथ—(दौड़कर आता है। दरवाजे में सांकल चढ़ा कटोरी रुक्मिणी के आगे रख देता है) जी यह है कटोरी।

रुक्मिणी—इसमें का घी कहाँ गया?

रामनाथ—मैं क्या जानूँ? बिल्ली चाट गई होगी।

रुक्मिणी—उतना तो गए ही थे। दो कदम और जाकर रसोईघर से ले आते।

रामनाथ—जाता कैसे? चाबी तो तुम्हारी कमर में लटक रही है। और अब पत्थर तो नहीं गिर रहे हैं। जान पड़ता है अब आज की लीला खतम हो गई। मेरी समझ में तो आओ तुम्हीं खिड़की में सुलवा देता हूँ। एक कटोरी में सूजी और एक कटोरी में चीनी भी ले आना। और हो यह बाहर के दरवाजे

में भी साँकल चढ़ाती जाना।

रुक्मिणी—(मुस्कराकर कटोरी उठाती है और द्वार का साँकल खोल जाती है)।

रामनाथ—(खिड़की के पास बैठ पंखा झलता हुआ) हाँ, जरा भी पत्थरों के गिरने का इशारा मिले तो फौरन ही मुझे आवाज दे देना।

मुन्नी—पिताजी, इन भूतों को कोई पकड़ क्यों नहीं सकता?

रामनाथ—ये हाथ ही नहीं आते।

मुन्नी—क्यों?

रामनाथ—ये हमारी तरह हाड़-मांस के बने नहीं होते। ये छाया के बने होते हैं, छाया को कोई कैसे पकड़ सकता है?

मुन्नी—लेकिन छाया पत्थरों को उठाकर कैसे हमारी छत पर फेंक सकती है?

रामनाथ—सवाल तुम्हारा बड़ा वाजिब है। लेकिन भूत-प्रेत ऐसा करते हैं। कैसे करते हैं, मैं नहीं बता सकता। (बाहर किसी का बोलना सुनकर) ये कौन बोल रहे हैं?

[एक तश्तरी में पूड़ी भाजी और एक कटोरी में घी लिए रुक्मिणी आती है। उसके पीछे साहबी ठाठ में जितेन्द्र और प्रतिमा प्रवेश कर, कमरे में निःसंकोच आते हैं। उनको देखते ही रामनाथ झट से पंखा फेंक तलवार हाथ में ले लेता है।]

जितेन्द्र—इस कमरे में यह बिलकुल भूतों की गंध है। खैर जब मिल गया तो फिर—

रुक्मिणी—ये जी के लड़के यही हैं और यह इनकी बहू है।

रामनाथ—ओहो! नमस्ते-नमस्ते। हमारी भावजिन के चिरंजीव हैं आप? वे कुशलपूर्वक घर तो पहुँच गई हैं न?

जितेन्द्र—ओह, वेल कभी की। उन्होंने ही तो हमसे कहा है इस मकान की छत पर भूत पत्थर फेंकता है। हमें कभी विश्वास नहीं होता। लेकिन वे यहाँ अपनी आँखों से देख गई हैं।

रामनाथ—उन्होंने रोका भी नहीं आपको ? कहीं कोई पत्थर आपके लग जाता तो ?

जितेन्द्र—हम तो भूत को मानते ही नहीं फिर उसका फेंका पत्थर कैसे लगेगा ?

रामनाथ—इनको भी नहीं रोका ।

जितेन्द्र—भूत के दर्शन की उतावली इन्हें मुझसे अधिक है ।

निरुपमा—(रुक्मिणी से) दिखाइए न कहाँ है भूत ?

रुक्मिणी—(छत पर चूल्हे का कंकाल दिखाकर) देखिए, यह सब भूत-ही-भूत तो है । यह चारपाई के कमरे में चूल्हा [illegible] आया है ।

जितेन्द्र—वह पत्थर कहाँ पर फेंकता है ?

रामनाथ—यह देखिए । (चुन्नी का पट्टी बँधा सिर दिखाकर) यह फूटा है सिर ।

जितेन्द्र—आप यह मजाक तो नहीं कर रहे हैं ?

रामनाथ—आप से हमें मजाक करने की क्या जरूरत है ? इस वक्त तो मैं आपको हरगिज राय न दूँगा । सुबह होते ही आप हमारी छत पर सैकड़ों पत्थर देख सकते हैं ।

जितेन्द्र—लेकिन पत्थर नहीं हम तो भूत देखने आए हैं ।

रामनाथ—कुछ देर ठहरिए, फिर शायद वह आ जाय ।

निरुपमा—(रुक्मिणी से) बहन आपने भी देखा उसे ? कैसा है ?

रुक्मिणी—देखा तो नहीं लेकिन यह टीन की छत बजती तो सुनी है ।

जितेन्द्र—नॉनसेंस ! हम तो बिलकुल भूत से मुकाबला करने आए थे । यह तो वही निरी गप निकली ।

रामनाथ—ठहर जाइए न फिर कह तो रहा हूँ ।

जितेन्द्र—खाना नहीं खाया अभी ।

रुक्मिणी—नहीं खा लीजिए दो रूखी-सूखी ।

रामनाथ—अब तो घी आ गया पराठे सिक जाएँगे ।

जितेन्द्र—क्यों निरुपमा ?

निरुपमा—अब तो माँ जी ने भी घाटा पूरा लिया होगा ।

जितेन्द्र—घोंस राइट की बिल कम दूँगा ।

रामनाथ—थैंक यू !

जितेन्द्र—गुड बाइ

रामनाथ—गुड बाइ । लेकिन जरा होशियारी से शायद रास्ते में हो जाय उससे मुठभेड़ !

[जितेन्द्र और निरुपमा जाते हैं । रामनाथ उन्हें पहुँचाकर आता है और भीतर का द्वार बन्द करता है ।]

रुक्मिणी—(खिचड़ी के पास बैठती हुई) अब तो सारे मुहल्ले में बात फैलती जा रही है । सब तमाशा देखने के शौकीन हैं । इस भूत का मजा देख का उपाय बता देने को कोई तैयार नहीं ।

मुन्नी—माँ भूख लग गई ।

रुक्मिणी—बेटी अब कुछ देर नहीं है । अभी सबसे पहले तुम्हीं को बनाती हूँ । यह पतीली रख दी मने चौके पर । (खिचड़ी पर पतीली रखती है) ।

[अचानक फिर छत पर एक पत्थर पड़ता है]

रामनाथ—है ! यह तो फिर बोला !

[फिर एक के बाद दूसरा कई पत्थर गिरते हैं ।]

रुक्मिणी—अब तो बरतन गये । अब कटोरा भी तब एक भी नहीं ।

रामनाथ—जी चाहता है उन दोनों का हाथ पकड़कर यहाँ घसीट लाऊँ और दिखा दूँ यह साक्षात् भूत । बहुत देखे ऐसे भूत देखने वाले !

रुक्मिणी—बाहर का दरवाजा तो बन्द कर आए न ?

रामनाथ—अभी भीतर-बाहर दोनों ।

[फिर कई पत्थर बरसते हैं । उनके गिरने की आवाज के साथ परदा गिरता है और पन्द्रह दिन का अतीत दिखाकर फिर परदा उसी दृश्य पर उठता है । मुन्नी के सिर का घाव अब अच्छा हो गया है । वह खिचड़ी खा रही है । खाने-पीने का सामान और बर्तन एक तरफ रखे हैं । रामदेई आती है । रुक्मिणी उसका स्वागत करती है ।]

रुक्मिणी—नमस्ते। आज तो आप पूरे एक पखवारे बाद आईं।

रामदेई—क्या हाल है ?

रुक्मिणी—उजाले पख में तो कुछ नहीं हुआ, अब वह फिर काला पख शुरू हुआ है। अब देखा जाय क्या होता है।

रामदेई—हाँ कहते तो हैं उजाले पख में भूत-प्रेतों की ताकत मर जाती है और कृष्ण पख में वे फिर तेज हो जाते हैं। मुन्नी का पाँव कैसा है ?

रुक्मिणी—दो तीन दिन से अस्पताल नहीं जाती। पाँव पूरा हो गया।

रामदेई—भगवान् का धन्यवाद है। भूत की शान्ति के लिये कुछ पूजा पाठ तो कराना ही था।

रुक्मिणी—उन्हें भेजा तो है आज मैंने चिमटिया बाबा के पास। सुना है, पौन घर गई तो वे एक-एक बात ही नहीं कह देते उसका रामबाण इलाज भी बता देते हैं।

रामदेई—हाँ जरूर जल्दी से कुछ करो या छोड़ दो इस मकान को। मेरा बेटा कहता है मैं इसे बिलकुल गिराकर फिर नए सिरे से बनवाऊँगा।

रुक्मिणी—मकान तो हम तभी छोड़ेंगे या तो आप हमारा सामान उठाकर बाहर रख दें या वह भूत ही हमारा हाथ पकड़कर हमें बाहर निकाल दे।

रामदेई—राम ! राम ! यह भी कोई कहने की बात है ? हम क्यों तुम्हें निकालने लगे ? लेकिन भूत के मन में क्या है, इसे कौन जान सकता है ? अच्छा मैं तो चली अब फिर अँधेरा हो जायगा।

[रामदेई जाती है। रुक्मिणी उसे पहुँचाने बाहर तक जाती है। फिर शीघ्र ही रामनाथ के साथ लौटकर आती है।]

रामनाथ—भूत के फेंके हुए पत्थर मैंने जैसे ही चिमटिया बाबा के सामने रखे तो कहने लगे—ये पत्थर भूत ने फेंके हैं।

रुक्मिणी—तुमने कुछ बताया नहीं होगा।

रामनाथ—एक शब्द भी नहीं। अपने आप जान लिया उन्होंने। यही तो उनकी तारीफ है। मैंने पूछा—महाराज, यह कौन भूत है ? बोले—यह पुराने कब्रिस्तान का भूत है।

रुक्मिणी—पुराना कब्रिस्तान ? पुराना कब्रिस्तान कौन है ?

रामनाथ—पुराने कब्रिस्तान दो हैं। एक अँगरेज़ों का एक मुसलमानों का।

रुक्मिणी—आप गए थे कभी किसी में ?

रामनाथ—इससे क्या मतलब ?

[रात हो जाती है। अँधेरा बढ़ जाता है। रामनाथ बिजली जलाता है। रुक्मिणी दरवाज़ा बन्द कर उस पर सांकल चढ़ा देती है।]

मुन्नी—पिताजी मुझे डर लग रहा है।

रामनाथ—पगली कहीं की! हनुमान चालीसा पढ़। मैंने बाबा से पूछा—यह भूत क्या चाहता है ? उन्होंने जवाब दिया—वह बदला चाहता है।

रुक्मिणी—कैसा बदला ?

रामनाथ—मैंने पूछा—मैंने क्या बिगाड़ा है ? बोले—तूने उसकी हड्डियाँ नंगी कर दीं।

मुन्नी—पिताजी!

रामनाथ—मत डर बेटी! मैंने कहीं किसी के कुछ नहीं किया। मैं बाँस को छूता भी नहीं फिर किसी की हड्डी क्यों खोदूँगा। उन्हें धोखा हो गया है।

रुक्मिणी—आपने पूछा नहीं वह पत्थर क्यों बरसाता है ?

रामनाथ—बोले—वह दीवार बनाना चाहता है।

रुक्मिणी—पत्थर बरसने बंद कैसे होंगे ?

रामनाथ—दीवार बन जाय तो पत्थर नहीं बरसेंगे।

रुक्मिणी—दीवार कहाँ पर बन जाय ?

रामनाथ—उसी पुराने कब्रिस्तान में।

रुक्मिणी—कौन-सा कब्रिस्तान ?

रामनाथ—अभी बताई जब मैं उधर गया ही नहीं तो क्यों पूछूँगा ?

रुक्मिणी—फिर क्या होगा ?

रामनाथ—देखा जायगा जो तकदीर में होगा।

रुक्मिणी—वे पत्थर कहाँ हैं ?

रामनाथ—एक दूसरे बाबा को दे आया हूँ।

रुक्मिणी—कौन आया ?

रामनाथ—देखो मालूम हो जायगा सुबह दिन में। रात हो गई। कोई चीज छूटी तो नहीं ?

रुक्मिणी—अपनी समझ से तो सभी कुछ ले आई हूँ। देखा जायगा फिर।

रामनाथ—(ध्यान से बाहर सुनकर) कोई बाहर का दरवाजा खटखटा रहा है। जाना ही पड़ेगा। (भीतर का द्वार खोलकर बाहर जाता है)।

रुक्मिणी—जल्दी आ जाना। फिर अँधेरी रातें शुरू हो गईं। (मुन्नी से) खिचड़ी गरम हुई बेटी ?

मुन्नी—हाँ कभी की।

रुक्मिणी—तरकारी छौंक लूँ।

[अचानक बाहर से रोता-चिल्लाता रामनाथ आता है। भीतर आकर एकदम दरवाजा बन्द कर उस पर साँकल चढ़ाता है।]

रामनाथ—अरे बाप रे ! अब तो नहीं रहा जाता इस मकान में। मगर आज रात जिंदा रह गए तो कल सुबह होते ही भागें यहाँ से।

रुक्मिणी—कुछ कहो तो सही क्या हो गया ? पत्थर की तो कोई आवाज नहीं सुनी हमने।

रामनाथ—देखे ! देखे ! साक्षात् देखे काले-काले ! एक नहीं दो-दो। कहने लगे मकान छोड़ो नहीं तो जिन्दा ही सबको चबा जाएँगे।

मुन्नी—पिताजी पिताजी आप यह क्या कह रहे हैं ?

रामनाथ—डर मत बेटी आज की रात काट लो कल सुबह होते ही बिस्तर गोल कर चल देंगे यहाँ से।

[भीतर के द्वार को कोई खटखटाता है]

रुक्मिणी—हे भगवान् कहाँ हो ?

आवाज—(बाहर से) रामनाथजी ! दरवाजा खोलो डरो मत।

रामनाथ—(आवाज पहचानकर) दरोगाजी आप हैं ?

आवाज—हाँ मैं हूँ। भूतों को पकड़ लाया हूँ।

मुन्नी—पिताजी आप कहते थे भूतों को कोई नहीं पकड़ सकता।

[रामनाथ द्वार खोलता है। एक सिपाही दो सिर से पैर तक काले कपड़ों से ढके 'भूतों' को लेकर आता है और फौरन ही दरवाजा बन्द कर देता है।]

रुक्मिणी—ये कौन हैं।

दरोगा—मैं सी० आइ० डी० का दरोगा हूँ। कई हफ्तों से अंधा भिखारी बनकर उधर गली में बैठा रहता था। जो आज चलकर आपने मुझे दिए उनमें मेरे दस्तखत थे। मेरा अन्दाज शायद ठीक ही है। ये हैं साक्षात भूत।

रामनाथ—ये कौन हैं?

दरोगा—(एक का मुँह खोलता है)।

रामनाथ—हैं! यह तो हमारी मकान-मालकिन के सुपुत्र निरंजन हैं!

रुक्मिणी—(दूसरे का मुँह खोलकर) यह तो निरुपमा जी हैं!

[परदा गिरता है]

पात्र

नरायन

परदा तोड़क क्लब का मेम्बर बनने का उम्मीदवार

चमेली

उसकी स्त्री

सोना

उसका चपरासी

एक चाटवाला, एक साइकिल सवार, परदा-तोड़क क्लब के प्रधान और उनकी पत्नी, क्लब के दूसरे स्त्री और पुरुष मेम्बर

देश—नरायन की बैठक, बाजार का एक भाग और परदा-तोड़क क्लब की मीटिंग

काल—एक शाम

परदा-तोड़क क्लब



"घर के भीतर पोत के सामने परदा, तुम्हें शरम नहीं आती ?"

पहला दृश्य

[मेज-कुरसियों से सजा नरायन का कमरा। वह एक कुरसी पर बैठा परदा-तोड़क क्लब के नियम पढ़ रहा है। बाईं तरफ अन्दर जाने का द्वार है जिस पर एक परदा पड़ा है। चमेली घूँघट काढ़े हुए भीतर से आती है और चाय-मिठाई मेज पर रखती है।]

नरायन—(किताब मेज पर पटककर) अफ़सोस! ईश्वर के इस न्याय पर बलिहारी जाऊँ। मैं इतना अप-टू-डेट जैंटलमैन और परदे का जानी दुश्मन मगर मेरी श्रीमती इतनी गँवार और परदे की पुजारिन! (चमेली का घूँघट उलटता है और उसकी काली सूरत दिखाई देती है। वह अन्दर भागने की कोशिश करती है लेकिन नरायन उसकी साड़ी खींच लेता है) घर के भीतर पति के सामने परदा कैसा? तुम्हें शरम नहीं आती?

चमेली—अच्छा साड़ी छोड़िए, घूँघट नहीं निकालूँगी। लेकिन आपके साथ उन मकटों के क्लब में जाने को हरगिज राजी नहीं हूँ।

नरायन—चुप रहो! जबान पर लगाम दो। वे मकट क्यों हैं जो हिन्दुस्तान की इस सदियों की गंदगी को इस गुलामी को दूर कर रहे हैं। मकटी तुम हो जो इस काली नाक पर भी तीन हाथ का घूँघट काढ़े रहती हो। (पुचकारकर) मेरी मान जा चम्पो! तू भी मेम्बर बन जा और मैं भी मेम्बर बनूँगा। अच्छी सोसाइटी में घूमेंगे बड़े-बड़ों से जान पहचान होगी। खुली हवा में टहलोगी डाक्टरों का बिल कम हो जायगा। मन चाहा सौदा बाजार से खरीद लाओगी, नौकर चाकरों की बक-बक झक-झक से छुट्टी पा जाओगी।

चमेली—हूँ हूँ! मैं न बनूँगी मेम्बर। चूल्हे के चक्कर और बच्चों के फंदों में से जहाँ भी हूँ अच्छी हूँ। आप जाइए और मेम्बर बनिए, मैंने कब आपको मना किया?

नरायन—अजीब पेच तो यही है। मैं तुम्हारे मेम्बर बने बिना मेम्बर नहीं हो सकता।

चमेली—क्यों नहीं हो सकते ?

नरायन—क्लब की विशेष शर्त ही यही है। (किताब खोलकर पढ़ता है) "किसी भी व्यक्ति को परदा-तोड़क क्लब का मेम्बर बनने के लिये यह जरूरी है कि वह अपने घर की कम-से-कम एक परदे वाली का परदा दूर करके क्लब का मेम्बर बनाए।" इसीलिये तुम्हारी खुशामद करनी पड़ी है। चलो।

चमेली—कभी नहीं। खुद लहँगा और ओढ़नी पहनकर चले जाइए और वहाँ जाकर कहिए मेरे घर में नाक कटाने के लिये कोई सूर्पनखा नहीं है।

नरायन—तुम्हें हँसी सूझी है और मैं क्लबवालों से वादा कर चुका हूँ कि आज शाम की मीटिंग में अपनी श्रीमती का परदा तोड़कर मेम्बर बनूँगा।

चमेली—आपका वादा पत्थर की लकीर नहीं है। फिर जाकर कह दीजिए मेरी श्रीमती परदा तोड़ने से लाचार है।

नरायन—वाह! खोब बात हुई? कहूँ कैसा बेवकूफ है! पहले क्यों वादा किया! अपने वादे को पूरा करना जेंटलमैन की पहली विशेषता है।

चमेली—आप मेरे लिये हार, साड़ी और जंपर लाने के लिये कितनी बार कह चुके हैं, क्या वे वादे नहीं थे?

नरायन—(मुँह बनाकर सिर खुजलाता है) हाँ सच्चे हैं। अच्छा क्लब में चलो, अबकी तनख्वाह में सबसे पहले तुम्हारी ही फरमायश पूरी की जायगी।

चमेली—मैं लाज गँवाकर उस हार के पहनने से बाज आई।

नरायन—देखो, मुझे गुस्सा चढ़ जायगा, नहीं तो ज्यादा बक-बक मत करो। घूँघट हटाकर बाहर आने में तुम्हारी कौन-सी इज्जत का नीलाम हुआ जा रहा है? दुनिया का देखो, दूसरी औरतें किस तरह नई रोशनी और आजाद हवा में चल-फिरकर जीने का सुख उठाती हैं। बड़े से बड़े घर की औरतें घूँघट का जाल काटकर तितलियों की तरह उड़ती फिरती हैं।

चमेली—वे मोटरों में चलती हैं, तुम्हारे पास तो एक कपड़ा भी नहीं है।

नरायन—अरी भारत की अबला, कुछ सदियों से मर्दों ने घर की चार दीवारी के भीतर धुँधली रोशनी और बासी हवा में कैद कर रखा है। तेरे

विवाह से कुमारी के सम्मान आगामी से दूर नहीं हो सकते। (कुछ देर सिर पर हाथ रखकर सोचता है) लेकिन नहीं मैं तुम्हें जबरदस्ती घसीटकर घर के बाहर न जाऊँगा और पड़ोसियों को बता दूँगा कि मर्द और औरत दोनों के अधिकार बराबर हैं।

चमेली—चमेली को मशीन से जाना ठीक है क्या? चमेली पर्दा छोड़कर उठ गयी समाज में! नहीं नहीं मैं इस बात को जबान पर रख भी नहीं सकती। सीताजी और सतीजी के समय से जो रीति चली आ रही है, जो हीन स्त्रियों का आभूषण है जो आज उनकी मर्यादा है—उसे तोड़कर फिर कहाँ रह सकूँगी? नहीं नहीं मैं जात-बिरादरी में अपनी हँसी नहीं करा सकती। मुझे उन लोगों के बीच में रहना है।

नरायन—(लंबी साँस लेकर) ओ ऽ ऽ फ् फ! पिताजी ने इस गँवारिन की चुटिया मेरी टाँग से बाँधकर बड़ी भूल की! (एकाएक गुस्से में आकर उसका हाथ पकड़ लेता है) तू नहीं चलेगी?

चमेली—नहीं।

नरायन—तुम्हें चलना पड़ेगा। (सिर पर से उसकी साड़ी खींच लेता है)।

चमेली—जीते जी नहीं जाऊँगी। (साड़ी छुड़ाकर फिर सिर ढाँप लेती है)।

नरायन—कैसे नहीं चलेगी? (फिर उसकी साड़ी पकड़कर खींचने लगता है)।

चमेली—(दोनों हाथों और घुटनों से साड़ी दबा मुँह ढककर जमीन पर बैठ जाती है) मैं अपनी जाति के धर्म को नहीं छोड़ सकती।

नरायन—यह धर्म नहीं है, समाज का बनाया हुआ एक नियम है जो पुराना पड़ जाने से सड़ गया। अब जरूरत है कि उसे बदल दिया जाय।

चमेली—(मुँह छिपाए चुप बैठी रहती है)।

नरायन—तू नहीं चलेगी?

चमेली—कह तो दिया नहीं।

नरायन—(गरजकर) नहीं?

चमेली—नहीं! नहीं! नहीं!

नरायन—जा जा मर ! (लात मारकर उसे परदे के भीतर धकेल देता है) तू मेरी कोई नहीं और मेरा तुमसे कुछ वास्ता नहीं । नहीं पिऊँगा तेरे हाथ की बनी चाय । (चाय का प्याला और मिठाई की तश्तरी भी उठाकर भीतर फेंक देता है) ।

[कंधे पर थाल चढ़ाए तरकारी की डलिया लिए दीना आता है । यह सब कुछ देखकर वह भौचक्का खड़ा रह जाता है ।]

दीना—बाप रे ! यह क्या मामला है ? (नरायन चौंककर उसकी तरफ देखता है) लीजिए बाबूजी (डल्ले की टोकरी जमीन पर रखकर पैसे वापस करते हुए) तेरह आने गिन लीजिए । छ पैसे के आलू और छ पैसे की मिर्ची लाया हूँ । (दोनों हाथों से कान पकड़कर जबान काटता है) मरा भला ।

नरायन—कहाँ भला ?

दीना—अपने घर को हुजूर ।

नरायन—वजह ?

दीना—मेरे बाप ने मुझसे कह रखा है कि जिस घर में मियाँ-बीबी लड़ते हों उस घर का नमक मत खाना ।

नरायन—(उसका हाथ पकड़कर खींचते हुए) ठहर-ठहर मूरख मैं फिर भी तेरे लिए यहाँ रहने की जगह बनाए देता हूँ । तेरे लिए बिना नमक की सब्जी अलग निकालकर रख दी जायगी । तू अपनी गाँठ का नमक मिलाकर खा लेना ।

दीना—(खुश होकर) वाह ! क्या बात है बाबूजी दिमाग इसी को कहते हैं ।

नरायन—(घड़ी देखकर) समय का पता ही चला दीना ।

दीना—हो गया दीना ।

नरायन—दुनिया के तमाम मुल्कों की औरतें मर्दों के कंधे से कंधा मिलाकर आर्थिक सामाजिक और राष्ट्रीय उन्नति में योग दे रही हैं लेकिन हिन्दुस्तान की कुछ औरतों के दिमाग में ऐसा गोबर भरा हुआ है कि बात ही नहीं समझ पातीं । जो पकड़ा फिर छोड़ने को मिला या उसमें मुँह

खिलाने लगी।

दीना—पानी तबे से कढ़ाई का काम लिया जाने लगा।

नारायण—दीना, परदे में क्या कुछ भी फायदा दिखाई देता है तुम्हें?

दीना—कुछ नहीं सरकार, पर्दा अक्ल का होता है। इसके लिये ईश्वर ने ऊपर और नीचे दो पलकों के पर्दे दे ही रखे हैं, फिर यह एक घूँघट और! मूड़ पर मूड़! मुझे काटनेवाले कुत्ते की तरह लगता है।

नारायण—तो क्या किया जाय? जब घूँघटवाली परदा छोड़ने पर रजामंद न हो तो फिर क्या किया जाय?

दीना—वह खूब साड़ी पहन, सिर नंगा कर घूमने निकल जाय।

नारायण—(ताली बजाकर) वाह दीना! क्या बात है! अपने तुमने मेरे मतलब की बात कही नहीं थी, लेकिन मेरा मतलब निकल आया उसके भीतर से। मेरा मकान हल हो गया, चाभी मिल गई! दीना, साड़ी पहनकर औरत का वेश बना और मेरे साथ चल।

दीना—कहाँ ठेठर में सरकार?

नारायण—हाँ, तूने तो हिन्दी मिडिल पास किया है न?

दीना—लेकिन मेरा सार्टीफिकट तो खो गया है। कहीं डिप्लोमिसी चाहती है क्या?

नारायण—अरे नहीं। (परदा उठाकर बाहर चला जाता है)।

दीना—(सिर खुजलाकर) कुछ समझ में नहीं आया।

नारायण—(एक बुक लेकर वापस आता है) परदा-तोड़क क्लब में मेम्बर दीना, यहाँ तक यह लेक्चर देना पड़ेगा। (जेब से एक लिखा हुआ कागज निकालकर दीना को देता है) ले पढ़ ले। (बुक खोलता है)।

दीना—(कागज लेकर) लीजिए देखिए अभी कैसी रेल चलाता हूँ। (पढ़ने लगता है) प्यारी बहनों और प्यारे भाइयो, आपने परदे के खिलाफ लड़ाई लड़ने के लिये मेहरबानी करके हमें भी चाहे—

नारायण—(बुक के पन्नों को उलट-पलट करते हुए) बस-बस बहुत ठीक! मेरी मूड! तू बहुत होशियार है। ले यह साड़ी पहन। (बुक में से साड़ी

निकालकर देता है)।

दीना—बहुत अच्छा सरकार। (खुश होकर पहनने को तैयार होता है)।

नरायन—(उसे साड़ी पहनाते हुए) मैं तुम्हें थाना में अपनी बीबी जाहिर करूँगा।

दीना—(चौंककर एक तरफ भागता है) अरे बाप रे! (अन्दर की तरफ इशारा कर अपने कान मरोड़ता है)।

नरायन—अरे उजाड़! उधर कोई खटका नहीं है। सारे सिपाही हाजिर हैं।

दीना—हु-हु-हुजूर मगर बहूजी कहाँ जायेंगी?

नरायन—अरे चुप चुप उस चुड़ैल का नाम न ले।

दीना—लेकिन कहीं बेगम तो चौंककर नहीं जायेंगी।

नरायन—कुत्ता डरता क्यों है? ये हाथों को लकवा मार गया है क्या? लकड़ी का जवाब लकड़ी से और पत्थर का पत्थर से देना। (उसकी धोती के ऊपर साड़ी पहनाता है) देखना बड़ी होशियारी से काम लेना होगा कहीं कलई न खुल जाय। अपने को बराबर औरत ही समझते रहना साड़ी पहन लेने पर कोई मुश्किल बात नहीं है यह। कुछ आवाज बारीक कर लेना और हाथ-पैर भी औरतों की तरह जरा अदा से इधर-उधर हिलाना-डुलाना। ये लंबे बाल भी काम आ गए! कुछ छोटे जरूर हैं मगर जोड़ा बाँध लिए जायेंगे। ले यह जंपर पहन ले। (जंपर निकालकर पहनाता है)।

दीना—(औरतों की तरह नाज और अदा के साथ) जरा आइना तो देख लेने दीजिए।

नरायन—शरम तो लगती है जरा ठहर। (बटन लगा, कंघी से उसके सिर में माँग निकालकर हेयर-पिन लगाता है) ले ये चप्पल पहन लो। (चप्पल भी देता है) बस अब इसी घड़ी से अपने को औरत समझने लग।

दीना—अभी?

नरायन—(अपनी तरफ इशारा कर) हाँ।

दीना—अब तो आइना देख लूँ हुजूर!

नरायन—हाँ जरूर और जरा औरत की चाल-ढाल का नमूना भी

दिया है।

बीना—(ठोड़ी पर उँगली रख कर आइना देखता है) मगर एक बात रह गई और सब ठीक है।

नरायन—(घबराकर) क्या बात रह गई?

बीना—रंग नहीं आया!

नरायन—नहीं आया! अब क्या किया जाय? (अफ़सोस के साथ गालों पर हाथ रखकर बैठ जाता है)।

बीना—(कुछ सोचकर उछल पड़ता है) रंग भी आ गया!

नरायन—(उठकर बीना का हाथ पकड़ लेता है) अरे किस तरह?

बीना—बूट पॉलिश की डिबिया!

नरायन—बहुत बढ़िया! क्या बात है! धन्य तू! निकाल निकाल जल्दी से बूट पॉलिश की डिबिया! (घड़ी देखता है) अभी इसके लिये भी वक्त है।

बीना—(बूट पॉलिश की डिबिया और बुरुश निकालता है) ये लीजिए सरकार।

नरायन—बीना, तूने मेरी लाज रख ली भाई। नहीं तो मैं गिर गया होता ज़रूर पब्लिक की नज़रों में।

बीना—आप एक बात भूल गए!

नरायन—क्या?

बीना—मैं बीना थोड़े हूँ।

नरायन—ठीक कहती हो प्यारी! लेकिन रिहर्सल में गलती चल सकती है। नाटक में खबरदार रहूँगा। (पॉलिश निकालकर) लो आँखें बंद करो।

बीना—(ऊपर की तरफ देखता है)।

नरायन—अरी ऊपर क्या देख रही हो?

बीना—देखती हूँ कोई ढेला-पत्थर तो नहीं चला आ रहा है।

नरायन—ऐसी किसकी ताकत है! लो आँखें बन्द करो।

[बीना आँखें बन्द करता है और नरायन बुरुश से उसके मुँह पर पॉलिश

लगाता है।]

दीना—अ-हा-हा! बड़े मजे की खुशबू आ रही है। जरा इनके-इनके हाथों से स्वामी जी।

नरायन—देखो प्यारी सबों के बीच में जरा भी धम्माधोखी तो साफ देखकर गड़बड़ा जायगा और हँसी उड़ जायगी।

दीना—अभी बाहर में पौडर थोड़े हूँ जो घबरा जाऊँगी।

नरायन—मार डाला! मार डाला! अगर वहाँ यह कह दिया तो कमीज मरना हो जायगा।

दीना—तोबा! तोबा! (अपने गाल पर चपत लगाकर) नहीं स्वामी मैं मर्दों से क्यों घबराऊँगी। (उसके हाथ में पॉलिश लग जाती है, वह घबराता है)।

नरायन—कोई हरज नहीं। हाथों का रंग दूसरा थोड़े होगा। (दीना के दोनों हाथों में भी पॉलिश लगा देता है। फिर उसे एक रूमाल देता है) लो फ़कत पॉलिश इस रूमाल से पोंछ लो।

दीना—(वैसा ही करता है)।

नरायन—लो यह मेरे घर की चाबी सँभालो।

दीना—लाइए प्राणनाथ! (घर की चाबी लेता है)।

नरायन—(घड़ी देखकर) चलो अब चलें।

दीना—एक मिनट जरा आईना देख लूँ।

नरायन—चलो।

दीना—(साड़ी की चोटी से उलझकर गिर पड़ता है)।

नरायन—सँभल कर। (उसे सँभालता है)।

[दोनों जैसे ही जाने लगते हैं भीतर से कमेटी चीखती है—"प्राण—प्री!"]

दीना—(नरायन का हाथ खींचकर) जरा देर ठहर जाइए।

नरायन—क्यों?

दीना—ठीक हुई है न?

नरायन—खूब बड़ी सभ्यविलासिनी हो।

सीमा—औरत जात ठहरी न।

नरायन—ठीक-ठीक बिल्कुल ठीक! लेकिन यह ठीक ठीक ठीक भी है इसका कोई दूसरा नहीं। (हाथ पकड़कर उसे खींच ले जाता है)।

[दोनों के जाते ही चमेली आती है]

चमेली—(हाथ जोड़कर भगवान् से कुछ प्रार्थना करती है)।

[अगला परदा गिरता है]

दूसरा दृश्य

[बाजार का एक मोड़—कंधे पर एक थाल लिए एक चाटवाला आता है।]

चाटवाला—चाट! चाट! हाय चाट! चाट चाट! चटपटे मसालेदार! खाये तो मजा पाये चक्खे तो याद रखे।

[दूसरी तरफ से नरायन और सीमा आते हैं। घंटी देती हुई एक साइकिल एक तरफ से आकर दूसरी तरफ को चली जाती है। नरायन और सीमा का एकाएक साइकिल से एक तरफ को बचते हुए चाटवाले से टकरा जाना। चाटवाला गिर पड़ता है उसका थाल बिखर जाता है। नरायन सीमा का हाथ खींच लम्बे कदम बढ़ाकर चलता ही है कि जिसका पता पर चाटवाला लपककर नरायन को फिर वहीं पकड़ लाता है। सीमा भी आ जाती है और उसकी तरफ पीठ कर खड़ा हो जाता है।]

नरायन—(गुस्से में) क्या बात है? तुम्हें शरम नहीं आती? नमक-मिर्च सने हाथों से तुमने इस तरह एक जन्टलमैन का हाथ पकड़ लिया। तुम पर इज्जत हतक का मुकदमा क्यों नहीं चल सकता?

चाटवाला—किस मुकदमे के फेर में पड़े हैं हजरत! यहाँ देखो तुमने तो मेरा सारा खोमचा ही उलट दिया। सीधा घर से चला आ रहा था अभी

कोहनी भी किसने की थी ? इज्जत तो एक बनावटी चीज है। बाबूजी तुमने तो हमारे पेट में छुरी मार दी। रात कैसे कटेगी ? बाल-बच्चों को क्या खिलाऊँगा ?

नरायन—हाथ छोड़ दो।

चाटवाला—नहीं छोड़ूँगा। चिल्ला-चिल्लाकर तुम्हारे चारों तरफ अभी भाणों की भीड़ जमा कर दूँगा। मेरे खोमचे के पैसे रख दो।

नरायन—कहता हूँ हाथ छोड़ दो। एक शरीफ आदमी की बेइज्जती मत करो और खासकर उस वक्त जब कि उसकी बीबी उसके साथ है।

चाटवाला—आँखें खोलकर क्यों नहीं राह चलते ?

नरायन—मैं पढ़ा-लिखा आदमी क्या फिर आँखों में पट्टी बाँधकर चल रहा था। तुम ही तंग सड़क पर थे। इतना बड़ा चौड़ा थाल सिर पर, उसमें सारी दुनिया का सामान भरा, हाथ में अँगीठी उसमें अंगारे। मुँह में एक भोंपू लेकर उसे भी बजाते चलो कि लोग खबरदार हो जायें। छोड़ो हाथ।

चाटवाला—कभी नहीं।

वीना—(सामने होकर) छोड़िए इसके सिर पर कुछ यह ऐसे नहीं मानेगा।

[चाटवाले को शक होता है और वह वीना की तरफ ध्यान से देखता है।]

नरायन—अरे भले आदमी हाथ तो छोड़। (दूसरा हाथ सामने कर घड़ी में समय देखता है)।

चाटवाला—मेरा पूरे बारह रुपए का माल है। आखिरी पाई तक वसूल करूँगा (वह फिर शक कर वीना की तरफ देखता है। वीना मुँह छिपाता है)।

नरायन—हाथ तो छोड़ भले। पैसे नहीं तो कैसे निकालूँगा ? (झटका देकर हाथ छुड़ा लेता है। जेब से दस रुपए का नोट निकालकर उसे देता है)। दो रुपए वापस कर।

चाटवाला—(नोट को उलट-पलटकर देखता है) यह दस रुपए का नोट है। दो रुपए यार और पाँच के नोटों या मैं निकालूँगा।

बीना—एक साथ ही बिक गया । गली-गली मारे-मारे फिरते थे बच्चे । (नरायन से) पूरा नोट इसके सिर पर फेंकिए स्वामी । देर हो रही है । (दोनों का जाना) ।

चाटवाला—(ठोढ़ी पर बाहुल हाथ की अंगुली रख औरतों के स्वर में) देर हो रही है । (सहसा कुछ याद आते ही वह दौड़कर आता है और बीना का हाथ पकड़कर खींच लाता है । उसके पीछे नरायन भी आता है) क्यों दोस्त आज बहुत दिनों बाद मिले । उधार खाकर अब शक्ल भी नहीं दिखाते ।

नरायन—(हक्का-बक्का होकर) ओ बेईमान तुझे हो क्या गया ? पराई औरत का हाथ पकड़ लिया ?

चाटवाला—(सलाम करके) आदाब अर्ज है । बाबूजी यह सब जाकर अब्बा से कहिए । यह मरजान तो छिनूवा है । इसकी परछाई देखकर ही मुझे शक हो गया था । इसकी आवाज और लटके से आखिर पहचान ही लिया मैंने इसे । नहीं तो आज इसने अच्छी धूल झोंक दी थी मेरी आँखों में । इस तरह सजाकर कहाँ ले जा रहे हैं इसे बाबूजी ?

नरायन—(मुँह फिराकर मुट्ठी बाँधता है) ।

बीना—छोड़ देर हो रही है एक जगह ठठर में जाना है ।

चाटवाला—एक रुपया आठ आने पिछले रख जा अभी वरना कयामत तक नहीं छोड़ूँगा ।

नरायन—ले यह है तेरा रुपया । (रुपये देता है ।)

चाटवाला—(बीना का हाथ छोड़कर दाम लेता है) जीते रहो बाबूजी पूरे साल-भर में वसूल हुए हैं ।

[नरायन बीना का हाथ पकड़कर जल्दी ही सरक जाता है । चाटवाला अपना खोमचा समेटकर फिर आवाज देता हुआ चला जाता है—"आ—र—र—आ ! पकौड़ीवाला ऽऽ !"]

[परदा उठता है]

तीसरा दृश्य

[परदा-तोड़क क्लब की मीटिंग। एक तरफ क्लब के मेम्बर—मर्द व औरतें बैठी हैं। एक ऊँचे मंच पर क्लब के प्रधान खड़े होकर भाषण दे रहे हैं। पास ही उनकी धर्मपत्नी बैठी हैं।]

प्रधान—ईश्वर का धन्यवाद है रोज़-बरोज़ हमारे क्लब के मेम्बर बढ़ते ही जा रहे हैं। हर बड़े शहर में परदा-तोड़क क्लब की शाखें खुल रही हैं। औरतों को अपने अधिकारों की पहचान हो चली है। परदे का घूँघट डालकर उनको पिंजड़े का जन्तु बनाने वाले लोग मुँह छिपाते नज़र आ रहे हैं।

नरायन—(भीतर से) और किसी तरह इसका घूँघट उलटकर मैं भी आ पहुँचा जनाब।

मेम्बर—(चौंककर उधर देखते हैं)।

[नरायन वीना का हाथ पकड़े हुए आता है]

नरायन—लीजिए निकाल लाया मैं भी इस पिंजरे से बाहर।

मेम्बर—(खड़े हो ताली बजाकर) शाबाश! मिसेज और मिस्टर नरायन!

नरायन—(टोपी उतार सिर झुकाकर) थैंक यू।

प्रधान—हमें आप-जैसे निडर और साहसी सुधारकों की ज़रूरत है तभी हिन्दुस्तान के तमाम अन्धविश्वास मटियामेट होंगे। मैं आपका स्वागत करता हूँ मिस्टर नरायन और आपको बधाई देता हूँ।

प्रधान की स्त्री—(उठकर) और मिसेज नरायन मैं भी आपको आपकी हिम्मत और दिलेरी के लिए बधाई देती हूँ और परदे के बाहर की आज़ादी की आबहवा में आपका स्वागत करती हूँ।

[प्रधान की स्त्री नरायन का हाथ ज़ोरों से मिलाती है और प्रधान वीना का हाथ मर्दों से मिलाता है। कुछ लोग अपने हाथ में पसीना की रपट लग जाने से घबराते हैं। कुछ हाथ सूँघते और रुमाल से पोंछते हैं। सब लोग अपनी-अपनी जगहों में बैठते हैं। प्रधान और उनकी स्त्री नरायन और वीना को लेकर मंच पर जाते हैं।]

प्रधान—आपको परदा-तोड़क क्लब में शामिल करते हुए हमें बेहद खुशी होती है। आप क्लब की प्रतिज्ञा याद करके आए हैं ?

नारायन—जी हाँ।

प्रधान—अच्छी बात है कायदे के मुताबिक सबके सामने प्रतिज्ञा कीजिए।

नारायन—मैं धर्म और ईश्वर को हाज़िर-नाज़िर समझकर प्रतिज्ञा करता हूँ कि अपने घर की तमाम औरतों का परदा मिटा दूँगा और उन्हें मर्दों के बराबर अधिकार हासिल करने दूँगा। (बैठ जाता है)।

मेम्बर—(तालियाँ बजाते हैं)।

प्रधान की स्त्री—आप भी नियम के अनुसार प्रतिज्ञा कीजिए। याद है ?

वीना—याद तो नहीं है। आप बोल दीजिए, मैं दुहरा दूँगी।

प्रधान की स्त्री—कहिए, मैं प्रतिज्ञा करती हूँ मैं किसी वर्ण और जाति के मनुष्य से ऊन सूत रेशम टाट-पाट नायलन प्लास्टिक वगैरह किसी चीज़ का बना हुआ किसी तरह का परदा धारण नहीं करूँगी।

वीना—मैं प्रतिज्ञा करती हूँ किसी वर्ण (रुक जाती है)।

नारायन—अभी जेलखाने से बाहर निकालकर लाया हूँ और आपने एक-दम कम्पाउंड सेन्टेंस इसके सिर पर लाद दिया। आधा-आधा कहलवाइए।

प्रधान की स्त्री—कहिए, मैं प्रतिज्ञा करती हूँ।

वीना—मैं प्रतिज्ञा करती हूँ।

प्रधान की स्त्री—मैं किसी वर्ण और जाति के मनुष्य से—

वीना—मैं किसी वर्ण और जाति के मनुष्य से—

प्रधान की स्त्री—ऊन सूत रेशम टाट-पाट वगैरह—

वीना—ऊन सूत रेशम टाट-पाट वगैरह—

प्रधान की स्त्री—किसी चीज़ का बना हुआ किसी तरह का परदा धारण नहीं करूँगी।

वीना—किसी चीज़ का बना हुआ किसी तरह का परदा धारण नहीं करूँगा।

प्रधान की स्त्री—(चौंकती है)।

[नरायन गुस्से से और सब हैरानी से वीना की तरफ देखते हैं]

वीना—(संभलता है) मी-मी-मी—करूँगी परदा नहीं करूँगी। बस पार हो गया। (तीन बार दुहराता है)।

प्रधान—ईश्वर आप लोगों की मदद करें।

प्रधान की स्त्री—(वीना से) क्लब के नियम के अनुसार अब आपको एक छोटा-सा लेक्चर देना होगा।

नरायन—शरम की कोई बात नहीं। लिखा हुआ पढ़ सकती हो।

वीना—(कागज निकालकर) आज पहला दिन है इसलिये मैं घर ही से कुछ लिखकर लाया हूँ। (मेम्बर हैरान होते हैं और नरायन गुस्से से दाँत पीसता है। वीना फिर संभलता है) ल-ल-ई—लाई लिखकर लाई हूँ।

प्रधान—कोई हर्ज नहीं लिखा हुआ ही पढ़िए।

वीना—(पढ़ता है) प्यारी बहनो और प्यारे भाइयो आपने परदे के खिलाफ लड़ाई लड़ने के लिये मेहरबानी करके हमें भी अपने क्लब में शामिल किया है इसके वास्ते हम आपको हृदय से धन्यवाद देते हैं। प-र-दा यह तीन अक्षरों का वह भूत है जिसने औरतों की आज़ादी को छीन लिया और उनके जीवन को पशुओं से भी बदतर बना दिया। मर्द बहुत दिन औरतों को कैद करके मनमानी कर चुके अब उनकी पोल खुल गई।

मेम्बर—हियर, हियर! (तालियाँ पीटते हैं)।

वीना—मरदों की इस ज्यादती औरतों की इस गुलामी और समाज के इस कलंक को दूर करने के लिये—मैं परदा छोड़कर मैदान में कूद आया हूँ, (फौरन ही पाजे को ठीक करता है) ल-ल-ई—आई मैदान में कूद आई हूँ कि इस बुरे रिवाज का खातमा हो जाय।

मेम्बर—(तालियाँ बजाकर) हियर-हियर!

[बाहर खोंचेवाला आवाज़ लगाता है—"पकौड़ी गरम-गरम पकौड़ी!" सुनकर नरायन घबराता है और वीना चुप हो जाता है।]

कि ऐ भोली-भाली औरतो इस पर्दे के जाल को काटकर बाहर निकल आओ और तितलियों की तरह सूरज की सुनहरी किरणों में नाच करो। देखो पुरुषों ने दुनिया का सबसे चमकीला भाग अपने लिये रिजर्व कर रखा है। अन्त में मैं आप सब लोगों का तन-मन-धन से धन्यवाद करता हूँ। (सँभलकर) ही-ही-ही करती हूँ। (बैठ जाता है)।

[लगातार तालियाँ बजाते हैं—तालियों की गड़गड़ाहट में पकौड़ेवाला आकर अपना खोमचा और अंगीठी फ़र्श पर रखता है।]

पकौड़ेवाला—(दोनों हाथ कमर पे रखकर) ग र र र र म! पकौड़ी गा र र म! जहाँ आप हो मालिक! इस परदा-तोड़क क्लब में चला आया हूँ लेकिन पकौड़ी बेच लेने की नीयत से हरगिज नहीं!

प्रधान—चपरासी ने नहीं रोका? यह बलाकी किधर से घुस आया यहाँ?

पकौड़ेवाला—इस परदा-तोड़क क्लब में कैसी रोक-टोक हुजूर! चौड़े चौराहों और चूके पत्तों में बनाता हूँ। बड़े-छोटे अमीर गरीब दोनों मेरी पकौड़ियों का मज़ा लेते हैं। एक दाम एक काम! एक खास मसाला देता हूँ किसी के बाप को मालूम नहीं हो सकता और पकौड़ी भी उबलते हुए तेल में क्या ठमक रही है!

नरायन—(शीला से मेज़ के नीचे छिप जाने का इशारा करता है)।

शीला—(मेज़ के नीचे सिर कर लेता है)।

प्रधान—क्या बकते हो? निकलो यहाँ से।

पकौड़ेवाला—मेरी पकौड़ी से ज़्यादा गरम आप हरगिज नहीं हो सकते।

प्रधान—यह लिया चले जाओ यहाँ तुम्हारी पकौड़ियाँ नहीं बिक सकतीं।

पकौड़ेवाला—इसकी किसे फ़िकर है? (अंटी से एक रुपया निकालता है। उसे फ़र्श पर बजाता है) देखिए सरकार, है न खोटा?

प्रधान—बहुत हो चुका! कोई है निकालो इसे।

पकौड़ेवाला—मगर उसको भी तो पकड़ के चलूँ। कम्बख्त बेईमान निगुनी मुझे खोटा रुपया दे गया अभी अभी उसे अच्छी पकौड़ियाँ नहीं खिलाईं सरकार।

प्रधान—दिमाग खराब है क्या तुम्हारा? यहाँ कोई निगुनी नहीं है।

चाटवाला—आया है हुजूर मैंने उसे यहीं आते हुए देखा है। उसके साथ एक बाबूजी भी थे। उन्हीं ने मुझे यह रुपया दिया है। (फिर रुपया बजाता है) एकदम खोटा!

नरायन—(वह भी मुँह छिपा लेता है)।

प्रधान—क्यों सब हमारी मीटिंग गड़बड़ा दी! अब कमेटी के बाहर है। ठोकर मारकर खोमचा उलट दिया जायगा।

चाटवाला—बदमाश मुँह में कालिख पोत बगल में साड़ी लपेटकर मुझे धुल दे गया।

प्रधान—(कुछ चौंककर) कालिख और साड़ी?

[कुछ मेम्बर लोग अपने हाथों को देखते हैं]

चाटवाला—हाँ हुजूर कहता था ठहर करके आ रहा हूँ हो गया ठेंठर?

प्रधान की स्त्री—मिसेज नरायन आप गर्दन नीची किए बड़ी देर से फर्श पर क्या टटोल रही हैं?

प्रधान—और मिस्टर नरायन आप उधर क्या कर रहे हैं?

नरायन—क्या बताऊँ मेरी फाउनटेन पेन और इनकी रिस्टवाच गिर पड़े हैं उन्हीं को खोज रहे हैं।

प्रधान की स्त्री—बड़ी देर हो गई अबतक नहीं मिली?

[प्रधान हैरान होकर कुछ सोचता है। चाटवाला नरायन का हाथ खींचता है।]

चाटवाला—आदाब बजा लाता हूँ सरकार! यह रुपया बिल्कुल खोटा है, इसे मेहरबानी करके बदल दीजिए।

हीरा—(मेज के नीचे भाड़ी ओर जरा खोजता है)।

नरायन—यह बदतमीज हो बाहर दरवाजे पर खड़ा रहना था तुम्हें। (रुपया देकर) लो यह रुपया। जाओ फौरन निकल जाओ।

चाटवाला—जी हाँ सरकार जी! यह खोटा रुपया तो ले लो। (रुपया देकर खोमचा समेटता है) गर्ररम! पकौड़ी! पकौड़ी गर्ररम! (चला जाता है)।

प्रधान—मिस्टर नारायन कुछ समझ में नहीं आया।

प्रधान की स्त्री—रिश्वत नहीं मिली बहन!

धीना—(मेज के नीचे से) मेरे बाप-दादा में से किसी ने रिश्वत नहीं पचाई सरकार!

[सारी सभा चौंक पड़ती है। धीना हाथ में साड़ी-अंबर-बक्स लिए मेज के नीचे से निकलता है और उन्हें नारायन के हवाले कर देता है।]

मेम्बर—(सन्नाटे में आ जाते हैं)।

धीना—लीजिए सरकार, मैंने तो उसी वक्त आपसे छुट्टी माँगी थी। यह बहूजी की चीजें उन्हें दे दीजिएगा। अच्छा चला। जै राम जी की! मेरे ठठर में जो गलती हुई हो उसे माफ कर देना। (चला जाता है)।

प्रधान—अफसोस! अफसोस!! बेहद अफसोस!

मेम्बर—(उठकर नारायन की तरफ नफरत की अंगुली उठाते हैं)।

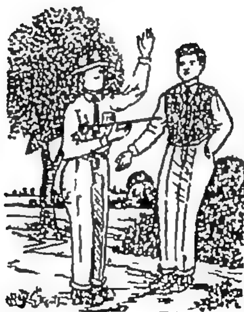
प्रधान—आप जैसे पढ़े लिखे शरीफ लोग ऐसी करतूत करें तो बस हो गया समाज-सुधार! शर्म! शर्म! शर्म!

मेम्बर—छी! छी! छी!

नारायन—(सिर नीचा कर लेता है उसके हाथ की साड़ी-अम्बर नीचे गिर जाते हैं)।

[परदा गिरता है]

बडे दिन का शिकार



"बन्दूक चोरी की नहीं लाइसेंस मौजूद और जंगल खुला हुआ।"

[स्थान—शहर का एक घना जंगल। समय—संध्या। झाड़ियों और लैम्टेनिया की प्रच्छन्न झाड़ी। उसके भीतर ज़मीन में पड़े सूखे पत्तों में खड़खड़ाहट सुनाई देती है। बाईं तरफ़ से प्रमोद बन्दूक में गोली भरते हुए आता है। रुककर आवाज़ के निशाने पर बन्दूक स्थिर कर ज्योंही वह घोड़ी दबाना चाहता है कि डॉकिंस आता है और उसके हाथ को खींचकर उसे रोक लेता है।]

प्रमोद—शुरू में ही तुमने टोक दिया ऐसी मज़ाक़ अच्छी नहीं है डॉकिंस। (बन्दूक नीची कर लेता है)।

डॉकिंस—देखो प्रमोद तुम मेरे दिली दोस्त हो। तुम्हारी भलाई-बुराई मेरा भला-बुरा है। यह बिलकुल शिकार के क़ायदे के ख़िलाफ़ बात है।

प्रमोद—अरे भाई, बन्दूक चोरी की नहीं लाइसेंस मौजूद है और जंगल खुला हुआ। बड़े डरपोक हो तुम फिर और कौन-सा क़ायदा-क़ानून है? (फिर बन्दूक तानने लगता है)।

डॉकिंस—और भी तो एक बग़ैर लिखी हुई क़ानून की किताब है। सुना बिना शिकार को देखे गोली नहीं चलाई जाती।

प्रमोद—क्यों?

डॉकिंस—मान लो कोई ख़ूँख़ार जानवर हुआ और तुम्हारी गोली उसे अच्छी तरह न लगी तो वह बड़ी बेरहमी और बेदर्दी से तुम्हारी खाल उतारकर रख देगा।

प्रमोद—हूँ! बिना देखे गोली! यह सुनो यह आवाज़ उससे भी देख रहा हूँ। और यह पुराने ज़माने में जो शब्द-बेधी बाण छोड़ते थे वह आवाज़ ही के सहारे तो था। तुम बड़े दक़ियानूसी हो होना भी चाहिए। रेल के गार्ड ठहरे, लोहे की जमी हुई लीक पर ही तो हमेशा तुम्हारी गाड़ी दौड़ती है। यह खड़खड़ाहट नहीं सुन रहे हो तुम? जंगली सूअर ही है। सूखे पत्तों पर मैं

उसकी बाज को साफ पहचानता हूँ। (फिर बन्दूक का निशाना बनाता है)।

हॉकिंस—पछताओगे।

प्रमोद—कभी नहीं। आज बड़े दिन की छुट्टी खतम हो जायगी तुम्हारी। सारी रेलवे कॉलोनी में खबर फैल जायगी। तुम भी बन्दूक तैयार रखो (गोली चला ही देता है)।

हॉकिंस—(भी मजबूर होकर अपनी बन्दूक तानता है)।

[झाड़ी में से एक बार एक औरत और एक बच्चे की रोने की आवाज़ें आती हैं।]

हॉकिंस—(निराश होकर अपनी बन्दूक नीची कर लेता है) आखिरकार कर ही डाली न तुमने नादानी! अपनी ज़िद को बड़ा मानना और दूसरे की राय को नाचीज़ समझने का नतीजा मुझको सब।

प्रमोद—(बन्दूक लेकर हॉकिंस की तरफ़ में जाता है) तुमने ठीक कहा दोस्त मदद करो।

हॉकिंस—मेरी ओट में कहाँ छिपोगे?

प्रमोद—फिर क्या होगा?

हॉकिंस—पास ही तुम्हारी मोटर तो खड़ी है।

प्रमोद—तुम भी लाओ अपनी बन्दूक। दोनों को मोटर में भेज दें। (उसके हाथ से बन्दूक लेना चाहता है। ड्राइवर को पुकारता है) ड्राइवर! ड्राइवर! (कोई जवाब नहीं मिलता) वो भला क्या? लाओ देते क्यों नहीं बन्दूक?

हॉकिंस—यह बुज़दिली है।

प्रमोद—नहीं भागेंगे नहीं सिर्फ बन्दूकें ही मोटर में रखने को भेज देते हैं।

हॉकिंस—यह क्या बहादुरी है?

[और भी ज़ोर से रोने की आवाज़ें झाड़ी के भीतर से आती हैं]

प्रमोद—लेकिन मेरा कसूर उतना नहीं जितना तुम्हारा है। वहाँ झाड़ी के भीतर घुसकर [illegible] है। यह जानवरों के रहने की जगह है या इन्सान की?

हॉकिंस—अब हमें पीछे की नहीं आगे की देखना चाहिए। मुझे तीन

आवाज़ें सुनाई दे रही हैं। एक मर्द, एक औरत, एक बच्चे की।

प्रमोद—गोली एक ही के लगी है डॉलिस।

डॉलिस—कैसे कहते हो? गोली खाया हुआ हमेशा के लिये चुप भी तो हो सकता है?

प्रमोद—डॉलिस! बचाओ।

डॉलिस—अरे तुम तो बच्चे ही हुए हो। और अपने बचने की क्या, अब इन्हें बचाने की कुछ कोशिश करो।

साथी—(झाड़ी के भीतर से) हाय! हाय! मरा रे! मारि डिहिस!

साथी की स्त्री—(वहीं से) मोर सुहाग केर नाश!

साथी का बच्चा—ओ! बप्पा रे बप्पा!

डॉलिस—तुमने आज मुझे भी फँसा दिया प्रमोद। बड़े दिन की छुट्टियों में बम्बई की सैर का प्रोग्राम था तुमने इस चक्कर में फँसा दिया। अब क्या होगा?

प्रमोद—डॉलिस! मैं दावे के साथ कहता हूँ मरा कोई नहीं है।

डॉलिस—अगर मरा कोई नहीं है तो असली मेहरबानी है। चलो घायलों को तुम्हारी मोटर में जल्दी से अस्पताल पहुँचा दें। यही पहला फर्ज़ है। लेकिन अगर किसी के गहरी गोली घुस गई हो तो?

प्रमोद—(जेब से एक नोटों की गड्डी निकालकर उसे दिखाता है) यह देखिए उसका भी इलाज।

डॉलिस—यह क्या नोटों की गड्डी! जंगल में क्या इसी मतलब से रख लाए थे?

प्रमोद—बंगले की पुताई का भुगतान करने के लिये कल ही चैक भुना लिया था। गाड़ीवान आज बड़े दिन की छुट्टी समझकर नहीं आए। जल्दी में जेब ही में रख लाया। मुनीम जी इन छुट्टियों में अपने घर गए हैं।

साथी की स्त्री—(झाड़ी के भीतर से) पिसुवा रे! अब हमार के बाप?

डॉलिस—कौन हो तुम इस झाड़ी के भीतर? बाहर निकलो भाई। ऐसे घबराने से काम नहीं चलेगा।

साम्भी—(झाड़ी के भीतर से) श्रो मैया रे ! मरि गया ! ऊँ ऽऽ (कराहता है) ।

डॉकिस—वे नहीं आ सकती तो क्या प्रमोद इत्तफ़ाकिया हमें पुकार रही है उधर ।

[दोनों झाड़ी की तरफ़ बढ़ते हैं]

प्रमोद—किधर से है रास्ता ? यह भी भला किसी भले आदमी के घुसने की जगह थी ? क्या हो गया ? इधर आओ ।

साम्भी—(झाड़ी में से) हाय ! हाय ! अब हमार के बाप ?

डॉकिस—मरा तो नहीं जान पड़ता घायल ज़रूर हुआ है कोई । (झाड़ी में देखकर) यह दिखाई दी एक औरत ।

साम्भी की औरत—मारि डिहिस का मारि डिहिस का ।

डॉकिस—झाड़ी से बाहर आओ भाई ।

साम्भी—(भीतर से रोता हुआ) कैसन बहु सरकार ! गोली लागि गवा ।

प्रमोद—गोली ? कहाँ लगी ?

साम्भी—(भीतर से रोते-रोते) गोड़ माँ !

प्रमोद—(छाती पर हाथ रख संतोष की साँस लेता है) ।

[सिर पर गठरी और गोद में रोते हुए लड़के को लेकर साम्भी की स्त्री झाड़ी के बाहर आने लगती है ।]

डॉकिस—गठरी तो सिर पर से उतार लो, लड़के को भी । सभी चीज़ें लादकर भला कैसे बाहर आ सकोगी ?

साम्भी की औरत—(गठरी और लड़के को ज़मीन पर रखती है) ।

[डॉकिस उसकी गठरी और प्रमोद उसके लड़के को लेकर बाहर आता है । साम्भी की औरत भी ।]

डॉकिस—भाई वाह ! कौन से रास्ते से गए तुम इस झाड़ी के भीतर ?

साम्भी की औरत—एक ग़रीब देर प्रान बचे दुःख-दुःख मसूक !

साम्भी—(भीतर से) हैं सियाबान जंगल मो मालूम करि जानवर बनाइ मारि डिहिस का !

प्रमोद—और वह कौन है ?

साम्बी की औरत—बाटे ! ऊ हमार भतार हुम्मन बाटे ! उनकेरि तुम गोली मारि दिहिन। हम तोहार का बिगाड़िस रहा ? ऊँ-ऊँ-ऊँ ऽ (रोती है) गोली ! मोर माँ ! कैसन बचबे ?

प्रमोद—धीरज रखो माँ हम उसे अभी ले आवेगा। (झाड़ी के भीतर घुसता है)।

टॉमिस—मकान कहाँ है तुम्हारा ?

साम्बी की औरत—पूरब जिला सरकार ! (रोती है) ऊँ ऽ ऽ !

साम्बी का लड़का—(रोता है।) ऊँ ऽ ऊँ ऽ ऊँ ऽ !

टॉमिस—लड़के को चुप कराने के बदले तुम खुद भी रोने लगी ? देखो ऐसे कोई फायदा न होगा।

[प्रमोद साम्बी को अपनी पीठ पर लादकर झाड़ी के भीतर से निकलता है। साम्बी के पैर में उसके सिर का साफा लिपटा हुआ है और उसके कंधे पर एक फटा-पुराना कंबल है।]

प्रमोद—(साम्बी को बड़ी खबरदारी से जमीन पर रखता है)।

साम्बी—(कराहता हुआ जमीन पर बैठकर अपना पैर पकड़ता है)।

टॉमिस—इस झाड़ी में कहाँ से आकर मरे तुम ? इतनी बड़ी दुनिया में और कहीं जगह ही नहीं रह गई थी तुम्हारे लिये ?

साम्बी—गरीब मनई, मजूरी क' तलाश माँ रहिन रहा। जंगल माँ रस्ता भूल गइन रहा। का करि ? फूटल तकदीर ! रात काटे बरे इहाँ बचा आइन रहा। (चिल्लाकर) ओ—हो—हो ! बड़ा दरद बाय सरकार !

प्रमोद—यह क्या सिर का तमाम साफा लपेट लिया पैर में ? दिखाओ कहाँ पर लगी है गोली ? खोलो पट्टी।

साम्बी—(पैर को हाथों से पकड़कर) मा—मा—मा—मा ! हाथ नाहीं लगाओ। ओ—हो—हो—हो ! (दाँत पीसता है और लम्बी साँस छोड़ता है) फू ऽ ऽ ऽ ! हड्डी में छेद हो गवा बाबू जी ! अब के मजूरी देवे ? कैसन रोटी मिलिहै ?

डॉक्टर—अरे भले आदमी जरा दिखाओ तो सही।

सामी—ऊँ हूँ-हूँ हूँ! अब मरि जइबू!

सामी की औरत—(रोती है) अब मरि जइबे मोर भतार! अब हम कैसन जियब हो राम! ऊँ ऽ ऊँ ऽ ऊँ ऽ!

सामी का लड़का—बप्पा हो मोर बप्पा! ऊँ ऽ ऊँ ऽ ऊँ ऽ!

डॉक्टर—तुमने तो आसमान सिर पर उठा लिया। ऐसे काम नहीं चलेगा। किसी ने जान-बूझकर थोड़े गोली चलाई। तुम्हें अभी मोटर में अस्पताल पहुँचा देते हैं।

सामी—अस्पताल? नाहीं हमका थाना माँ पहुँचाव ए।

प्रमोद—थाने में किसलिये?

सामी—रपट लिखाइब।

डॉक्टर—किसकी रपोट लिखाओगे? किसी दुश्मनी से गोली नहीं चलाई हमने।

प्रमोद—देर मत करो। फौरन ही अस्पताल जाकर अपना इलाज कराओ पहले। चंगे हो जाने पर फिर जाना थाने में।

सामी—(रोते-रोते) अरे गरीब का के इलाज करिबे? कैसन गोड़ जुड़िबे? कैसन दो पइसा मजूरी मिलिबे?

सामी की औरत—(और जोर से रोकर) अरे गरीब का के इलाज करिबे? कैसन गोड़ जुड़िबे? कैसन दो पइसा मजूरी मिलिबे?

सामी का लड़का—हे मोर बप्पा! हे मोर बप्पा!

प्रमोद—(जेब से नोटों की गड्डी निकालता है) यह देखो यह नोटों की गड्डी है। (एक-एक कर नोट उलटता है)।

सामी—अरे! कैसन जइबू अस्पताल? हे मोरी दय्या रे! (रोता है)।

प्रमोद—हम अपनी मोटर में पहुँचा देने को तो कहते हैं।

सामी—राम रे राम! अब गोड़वा काटि लिहिन जइबे। तब का करइबू, का खइबू? (रोता है)।

सामी की औरत—(रोती हुई) दैया रे दैया! अब गोड़वा काटि

बिहिन जइबे। तब का कमइबू का खइबू ?

प्रमोद—अरे सब इन्तजाम हो जायगा पहले अस्पताल में दवा तो करा लो।

सामी—हौरा सरकारी मनई बाट ? ई बन्दूक ?

प्रमोद—मेरे पिताजी का बहुत बड़ा फार्म है। पहले पैर तो ठीक करा लो। मजूरी का इन्तजाम होते देर न लगेगी। (गिनकर उसे सौ रुपए के नोट देते हुए) लो।

सामी—का हो ई ?

सामी की औरत—(ऊपर नीचे से देखकर रोने के स्वर में) हम हू देखि त।

टॉमस—नोट है सौ रुपए के। भाग खुल गए तेरे।

सामी—(नोट लेकर भीतर की जब में रखता है उसके कंधे का कंबल गिर पड़ता है जमीन में) सौ रुपए! राम जी तोहार भला करें!

सामी की औरत—(रोने के स्वर में) बिसुआर बप्पा! तोहार कम्मर गिर गवा!

सामी—(स्त्री को डाँटते हुए) रोवत काहे ? चुप रे (लड़का रोता है) चुप कर बचवा के।

सामी की औरत—(चुप हो जाती है। लड़के को गोद में ले चुप कराती है) आ री निंदिया ऽऽ।

सामी—अस्पताल पहुँचाइ द।

प्रमोद—अस्पताल में क्या कहोगे कैसे चोट लगी ?

सामी—ई देखो सरकार जंगल मा एकौ दरखत पर से गिर गइन रहा।

प्रमोद—आदमी चलता पुरजा है। यही बात एक समझ में नहीं आई, इतनी समझ रखकर भी इस झाड़ी के भीतर क्यों घुस पड़े ?

टॉमस—नहीं तो ये सौ रुपए कैसे मिलते ?

प्रमोद—(जोर से आवाज देता है) ड्राइवर!

ड्राइवर—(नेपथ्य से) जी सरकार।

प्रमोद—जहाँ तक गाड़ी आ सके वहाँ तक लाकर फौरन यहाँ लाओ। एक

साहब को अस्पताल पहुँचाना है।

हॉकिन्स—चल सकोगे गाड़ी तक?

सामी—(ज़मीन पर बैठे-बैठे आगे को खिसकता हुआ) ईं-यं-यं-यं! मी मरता रे! (रुक जाता है)।

[नेपथ्य में मोटर के आने की आवाज। मोटर भोंपू देकर रुक जाती है]

ड्राइवर—(दौड़कर आता है) सरकार, मोटर हाजिर है।

प्रमोद—इसे अस्पताल में भरती करा आओ। बेचारे के पैर में चोट लग गई है। मेरा नाम लेना डॉक्टर साहब से। जो कुछ खर्च लगेगा मैं दूँगा। जल्दी लौटना हम ठीक यहीं पर मिलेंगे।

ड्राइवर—(सामी का हाथ पकड़कर) चलो उठो।

सामी—(दर्द से चीखता है) ऊँ ऽ ऽ, मरि गया भाई!

हॉकिन्स—ड्राइवर, तुम इसका वह पैर पकड़ो जिसमें चोट नहीं है। मैं दोनों हाथ पकड़ता हूँ। तुम मेरी बन्दूक थमाओ। (प्रमोद को अपनी बन्दूक दे देता है)।

सामी—(चीख से) बचवा के अब्बा पकड़ी उठा—बाप!

[हॉकिन्स और ड्राइवर सामी को उठाकर ले जाते हैं। लकड़ी और बच्चे को लेकर उसकी औरत भी जाती है।]

प्रमोद—यह जंगल नहीं रह गया उठा ले जाती न।

सामी—(नेपथ्य से) घाटि गया चीतर के दौरे?

प्रमोद—(वहीं पर से उनको जाते हुए देखता है)।

[नेपथ्य में मोटर स्टार्ट होकर भोंपू देती हुई जाती है। हॉकिन्स लौटकर आता है और प्रमोद के हाथ से अपनी बन्दूक ले लेता है।]

हॉकिन्स—चलो जल्दी जान छूटी!

प्रमोद—एक तो बला की आफत तो टल गई भाई!

हॉकिन्स—खाली हाथ लौट जाना ठीक नहीं जान पड़ता। दोस्त लोग सब मजाक उड़ायेंगे।

प्रमोद—हॉकिन्स! यह भी ठीक नहीं है। चोटी के छूटे से अभी बड़े

शाम से घूमे हैं। जरा थकान दूर जाने दो। दस-बीस मिनट आराम कर लें यहीं पर।

[दोनों जमीन पर बैठकर सिगरेट सुलगाकर पीने लगते हैं और बन्दूकों को सिरहाने रखकर लेट जाते हैं। परदा गिरता है और एक घंटे का अतीत दिखाकर फिर उठ जाता है। हॉकिंस और प्रमोद दोनों उसी जगह सोए हैं। अचानक हॉकिंस उठ जाता है।]

हॉकिंस—(घड़ी देखकर प्रमोद को उठाता है) प्रमोद! प्रमोद! उठोगे नहीं? दस-बीस मिनट के बदले पूरा एक घंटा सो गए हम! अभी शाम हो गई, शायद कोई शिकार हाथ लग जाय। (दोनों उठ खड़े होते हैं। अचानक झाड़ियों ओर पत्तों की खड़खड़ाहट सुनकर) यह सुनो! है न शिकार?

प्रमोद—हो सकता है लेकिन बिना देखे गोली नहीं छोड़ूँगा। मैंने एक बार इस गलती की भारी कीमत चुकाई है।

हॉकिंस—शाबाश! (उसकी पीठ ठोकता है) चलो फिर देखकर ही गोली छोड़ना।

[दोनों जाते हैं]

प्रमोद—(नेपथ्य में) किधर हॉकिंस?

हॉकिंस—उसी आम के पेड़ की बगल में। ठीक नाक की सीध में। देखो?

प्रमोद—हाँ देखा। लेकिन यह तो कोई आदमी है। चौकन्ना हुआ आ रहा है।

हॉकिंस—उसी की आहट सुनी होगी। चलो यहाँ कुछ नहीं है यहाँ। अब घर के लौटने का भी वक्त हो गया।

प्रमोद—चलो मैंने तो पहले ही कह दिया था आज ठीक घड़ी नहीं है।

[दोनों लौटकर आ जाते हैं]

हॉकिंस—यह आदमी तो इधर ही चला आ रहा है।

प्रमोद—(उधर देखकर) यह तो हमारा ही मुंशी मालूम पड़ता है।

[किशन का आना]

किशन—सरकार!

प्रमोद—क्यों बिसन चौर तो है ? तुम्हारी चाल और स्वर में यह घबराहट कैसी है ?

बिसन—एक साथी भाग गया है छोटे सरकार। इसी जंगल में उसके आने का पता मिला है।

प्रमोद—कब भागा ?

बिसन—आज ही बजरदम सुबह। उसी को ढूँढने आया हूँ। आपने तो नहीं देखा ?

प्रमोद—मैं क्या तुम्हारे साथियों को पहचानता हूँ ? कल ही शाम तो मैं छुट्टी पर आया।

टॉमस—कुछ हुलिया तो बताओ उसका ?

बिसन—नाटे कद का मैला धोती, बदन में मिरजई, सिर पर एक मैला साफा और कंधे पर एक फटा लाल कम्बल। (जमीन पर एक कम्बल पड़ा देखकर) है ! कम्बल तो यही जान पड़ता है।

टॉमस—(ताली पीटकर हँसता है) हैं—हैं—हैं ! वाह वाह ! और उसके साथ उसकी औरत और एक छोटा लड़का भी था ?

बिसन—हाँ—हाँ ! वही—वही ! आपने देखे ?

टॉमस—भाई देखे तो सही लेकिन पकड़े नहीं।

बिसन—वे किस तरफ गए ?

प्रमोद—जाने भी दो बिसन कहीं भी गए।

बिसन—यह सिपाही के रामा पेशी लेकर आया है सरकार, जाने कैसे दूँ ? मैं उसे बिना हथकड़ी पहनाए चैन नहीं लूँगा। किधर को गए वे ?

प्रमोद—गए नहीं, हमारी मोटर गई है उन्हें पहुँचाने। बुलाकर आकर बतायेगा।

बिसन—हैं ! हैं ! यह क्या किया आपने ?

प्रमोद—मैंने उस चोर की टाँग में गोली मार दी। जाने भी दो उसे करनी का फल मिल गया। लेकिन मोटर ने बड़ी देर लगा दी।

[नेपथ्य में मोटर का भोंपू]

टॉमिस—शायद आ गई।

प्रमोद—मिस्टर टॉमिस यह कैसे ताज्जुब की बात है, पिता के अपराधी को सज़ा क्या पुत्र के ही हाथ से मिलनी थी ?

टॉमिस—मैं कुछ और सोचता हूँ मुझे तुम्हारी बात से इत्तिफ़ाक़ नहीं।

प्रमोद—ड्राइवर को आ जाने दो।

[ड्राइवर आता है]

टॉमिस—क्यों पहुँचा आए उसे अस्पताल ?

ड्राइवर—वह नहीं गया अस्पताल।

टॉमिस—क्यों ?

ड्राइवर—कहने लगा ठीक हो गई चोट।

प्रमोद—हूँ ! चोट ठीक हो गई ? उसके पैर को पट्टी ?

ड्राइवर—उसने खोलकर सिर पर लपेट ली।

प्रमोद—पैर की गोली ? घाव ? खून ?

ड्राइवर—नहीं कुछ नहीं सरकार।

विक्रम—फिर किधर गया वह ?

ड्राइवर—मोटर कम्पनी में टिकट घर की तरफ़।

प्रमोद—तुम पहुँचा आए थे ?

ड्राइवर—नहीं वह खुद ही दौड़कर चला गया था।

टॉमिस—यहीं पर तुम्हारी बात से मेरा इत्तिफ़ाक़ नहीं था।

विक्रम—उसने कहाँ का टिकट खरीदा ?

ड्राइवर—मैं क्या जानूँ।

प्रमोद—तुम्हें उसे पकड़कर यहीं मेरे पास लाना था। वह मुझे धोखा देकर चला गया।

विक्रम—और आपके पिताजी को भी तो।

प्रमोद—पिताजी से कितना पेशगी ले गया ?

विक्रम—नक़द दो सौ रुपए।

प्रमोद—सौ ये पूरे तीन सौ हुए।

विपिन—हाँ और कौन है ?

प्रमोद—कुछ नहीं विपिन पिताजी से कुछ न कहना।

विपिन—लेकिन पुलिस में जाकर अभी हुलिया कराना ही पड़ेगा।

प्रमोद—बड़ी देर लगाई तुमने ड्राइवर !

ड्राइवर—पंचर ठीक करने में देर हो गई सरकार !

ललित—चलो प्रमोद क्या फायदा अब ? इस बड़े दिन के शिकार में हम खुद ही मुर्गा बन गए !

प्रमोद—चलो लेकिन विपिन कुछ पिताजी से नहीं।

[सब जाते हैं मोटर के भोंपू की आवाज के साथ-साथ परदा गिरता है]

पात्र

रौसिया
उसका पहाड़ी नौकर

लल्लू
उसका लड़का

बहूजी }
बाबूजी }
ये दोनों

डाकिया

स्थान—बाबूजी का कमरा

काल—दिन के १०.५५ से ११.११ तक। बीच में पंद्रह मिनट का मतीव

साटरीफाटक



"रौमिया को घोड़ा बना लल्लू का प्रवेश।"

४

[बाबूजी का कमरा। एक ओर पलंग एक तरफ मेज-कुरसी। पलंग के पीछे एक ट्रंक एक सूट-केस एक अलमारी। मेज पर एक ग्रामोफोन, उसके सहारे कुछ किताबें कलम-दवात और एक बदाम घड़ी। दो आने-जाने के मार्ग। भीतर के भाग से रौंसिया को घोड़ा बना उसकी रस्सी की लगाम एक हाथ से थामे लल्लू आता है। उसके दूसरे हाथ में एक सन्टी है। रौंसिया की कमर में बँधी हुई धोती में एक झाड़ू खोंसकर घोड़े की पूँछ बनाई गई है।]

रौंसिया—(लल्लू को गिरा उठकर अपने कपड़े झाड़ता है) नहीं लल्लूजी बस हो गया अब न्याये नहीं। बाबूजी गए हैं नई नौकरी की खोज में और बहूजी नहा चुकी होंगी। दोनों में से कोई भी किसी वक्त आ सकते हैं तो क्या कहेंगे। सुबह से अभी तक मैंने बैठक में झाड़ू नहीं दी है। (धोती पीछे खोंसा हुआ झाड़ू निकालकर) आप भी तो सबक याद करनी है, जाइए नहीं तो कनाकड़ी हो जायगी।

[लल्लू कुर्सी पर बैठकर ग्रामोफोन में चाबी देता है। रौंसिया हाथ से इशारा कर मना करता है।]

लल्लू—नया गीत है सुनते ही फड़क उठेगा।

रौंसिया—मैं तो कान में अँगुली ठोंक लेता हूँ। (दोनों कानों में अँगुलियाँ ठोंक लेता है)।

लल्लू—(ग्रामोफोन में सुई बदल रेकार्ड बजाता है)।

रौंसिया—(धीरे-धीरे एक कान की अँगुली हटाता है गाना अच्छा लगता है दूसरे कान की अँगुली भी हटा लेता है और दोनों हाथों से ताली बजाने लगता है)।

लल्लू—अरे दरवाजा तो बन्द कर ले नहीं तो फिर कोई बहाना न चल सकेगा।

रौं.सया—(सांकल देकर दरवाजा बन्द करता है कभी फर्श पर झाड़ू देता है और कभी ताली बजाकर नाचता है)।

[कुछ देर बाद भीतर के दरवाजे पर खट-खट होती है। लल्लू झट से ग्रामोफोन बन्द कर किताब पढ़ने लगता है और रौसिया जोर-जोर से झाड़ू देना आरम्भ करता है।]

बहूजी—(दरवाजा खटखटाती हुई) अच्छा ! न खोलोगे दरवाजा ?

रौसिया—(झट से झाड़ू देना छोड़कर) आप है क्या ? आया बहूजी आया। (द्वार खोलता है)।

बहूजी—(धोये धुले हुए बालों के ऊपर तौलिया रखे खड़ी है। आते ही रौसिया के मुख देखती है) क्यों रे ग्रामोफोन किसने बजाया ?

लल्लू—(माँ की नजर बचाकर रौसिया से कुछ न कहने का इशारा करता है)।

रौसिया—मैं क्या जानूँ किसने बजाया ? न मुझे चाबी देने का शऊर, न सुई लगानी आती है और न रिकार्डों को पहचानना आता है।

लल्लू—(जोर-जोर से किताब पढ़ने लगता है) एच-ई ही ही माने वह मर्द एस-एच ई शी शी माने वह औरत।

बहूजी—लल्लू किसने बजाया ग्रामोफोन ?

लल्लू—(बिलकुल अनजान होकर) ग्रामोफोन ? कहाँ ? कैसा ? माँ ! मैं तो यहाँ किताब पढ़ रहा हूँ। जाने कहाँ किसने बजाया ?

बहूजी—यहीं बजाया।

लल्लू—यहाँ किसी ने नहीं बजाया। मुहल्ले में बजा होगा या तुम्हारे कान बजे होंगे। देखो ग्रामोफोन का ढक्कन बन्द है जैसे बाबूजी बन्द कर गए थे एच ई ही—

बहूजी—और अभी तक तूने झाड़ू भी नहीं दी रौसिया !

रौसिया—आपके गीले बालों में धूल जम जायगी इसलिए हाथ रोक दिया है। आप यहाँ से जायें तो फिर चले मेरा झाड़ू।

बहूजी—अच्छा जाती तो हूँ ! (मुँह बनाकर चली जाती है)।

रौसिया—(झाड़ू देने लगता है)।

लल्लू—एस-एच ई शी शी माने औरत। रौसिया मुझे मालूम है पंडेजी

में औरत के सवाल में मर्द के सवाल से एक हुकम बाकी है। क्यों होगा ?

रौशिया—आबहवा का असर। मैंने सुना है औरतों की तन्दुरुस्ती अच्छी रहती है यहाँ ठंडे मुल्क में।

[बाहर के दरवाजे पर खट्-खट होती है]

लल्लू—देख तो कौन है ?

रौशिया—आए, आए बाबूजी नौकरी ढूँढकर आए। (दरवाजा खोलता है)।

बहूजी—(भीतर से आकर) क्या कहा साहब ने ?

बाबूजी—(भीतर आकर) क्या बताऊँ ? अर्जी के साथ सार्टिफिकेट नत्थी करना भूल गया। (जल्दी में मेज पर की कुछ किताबों में ढूँढता है, नहीं मिलता)।

बहूजी—कहाँ रखा था ?

बाबूजी—(सिर खुजलाकर) कहाँ बताऊँ ? बारह बजे तक ढूँढकर मैं जाऊँ तो सकते हैं नौकरी मिल जायगी नहीं तो वहाँ सैकड़ों उम्मीदवार भिन-भिना रहे हैं। (किताबें खोलकर उनके भीतर ढूँढता है)।

बहूजी—लल्लू तुमने देखा है कहीं ?

लल्लू—मैंने कहीं नहीं देखा।

बाबूजी—रखा तो है किसी किताब के भीतर ही। लेकिन वह किताब कौनसी है ?

बहूजी—कुछ किताबों में मैं ढूँढती हूँ। (एक किताब खोलकर ढूँढती है)।

लल्लू—और कुछ में मैं। (एक किताब वह भी खोलकर ढूँढता है)।

[नेपथ्य में ग्यारह का घंटा बजता है]

बाबूजी—(चौंककर) अरे बाप रे! बारह बज गए! (सिर पीटकर) अब क्या होगा ?

लल्लू—(घड़ी उठाकर दिखाता है) नहीं बाबूजी अभी तो सिर्फ ग्यारह बजे हैं। बारह बजे तक तो हम आपके पन्द्रह सार्टिफिकेट ढूँढ डालेंगे। (एक किताब के भीतर ढूँढता है)।

बहूजी—रौशिया तू ने नहीं देखा ? (दूसरी किताब के भीतर ढूँढती है)।

रौशिया—शाटरी फाटक कैसा होता है वह ? सींग-जैसा या पूँछ की तरह ? क्यों बाबूजी ?

बाबूजी—वह मेरी लियाकत का सबूत मेरी रोशनी और मेरी पॉलिश है।

रौशिया—जी तो वह रखा है।

बाबूजी—अभी तक क्यों नहीं बताया ?

रौशिया—(कोने में से एक जूती पर पॉलिश करने का चीथड़ा निकालकर देने लगता है) लीजिए।

बाबूजी—यह तो जूता रगड़ने का चीथड़ा है।

रौशिया—आप ही ने तो पॉलिश कहा था।

बाबूजी—जूते की थोड़े कहा था।

रौशिया—समझा। (सोचकर चला जाता है)।

बाबूजी—(सिर पर अँगुली रखकर सोचता है) सिरहाने ? (तकिए के नीचे ढूँढ़ता है, कुछ नहीं मिलता। बिस्तर एक-एक कर उठा जमीन पर फेंक देता है)।

[बाबूजी और लल्लू जी चादर दरी और कम्बल की एक-एक तह में ढूँढ़ते हैं। कुछ नहीं मिलता।]

रौशिया—(बाबूजी की एक टाइ और टोप लेकर आता है) लीजिए यह आपकी टाइ और यह आपका टोप। यही दो चीजें नहीं थे गए आप तभी आपकी नौकरी अटक गई। इन्हें पहनकर सिधारिए दफ्तर को—वह बाहर आपकी नौकरी है देखें। मेरी समझ में तो जल्दी करने से यही रह गए। यही है आपके फ़ारटी शाटक या शाटरी फ़ाटक की भी बाप नहीं।

बाबूजी—नहीं है यह तू बेवकूफ है।

रौशिया—तो फिर कहीं नहीं आप यहीं ढूँढ़ें।

बाबूजी—हाँ ढूँढ़ो-ढूँढ़ो बारह बजे से पहले ढूँढ़ो। अरे तुम इस मेज पर की किताबों के बीच में लल्लू जी और तुम कपड़ों की ढेरों में। रौशिया तू चारपाई के नीचे देख यह ट्रंक और सूट केस बाहर निकाल।

रौशिया—(चारपाई के नीचे से ट्रंक और सूटकेस बाहर निकालता है।

मन्नू—(माता को इशारे से चुप करा, पट्टी उठा उसकी मुंदी आँखें पढ़ा देता है)।

बाबूजी—(कलमदान खोलकर उसमें ढूँढ़ता है) इसमें रखा था। ऐसी भी कुछ याद आती है। और याद ऐसी धोखेबाज है जितना उसे पकड़ने को दौड़ो उतना ही भागती जाती है।

बहूजी—(किताब में पंखा छोड़कर उसे पढ़ने में लग जाती है)।

मन्नू—ठीक है पिताजी, एक रेकार्ड ग्रामोफोन में बजा लीजिए, मन शान्त हो जायगा और सार्टिफिकेट बीच पड़ेगा अपने-आप कहीं भी होगा।

बाबूजी—तुम्हें हँसी सूझी है। (बहू से) और तुम्हारे भी किताब पढ़ने का क्या यही समय है? (सूटकेस खोलकर उसमें से कुछ कपड़े और किताबें निकालकर उसमें ढूँढ़ता है) आश्चर्य की बात है! रखा तो था यहीं गया तो फिर कहाँ? मेरा सार्टिफिकेट, वह बहुमूल्य है तो सिर्फ मेरे लिये दूसरे की नजर में वह सिर्फ एक रद्दी का टुकड़ा है। कोई उसे चुराए भी तो किस लाभ के लिये?

मन्नू—आँखें और होंठ दोनों कुछ देर के लिये बन्द कर ध्यान कीजिए पिताजी।

बाबूजी—हाँ कुछ याद आ तो रही है। नीचे का ट्रंक? वह रहा, उसमें लकड़ी का कलमदान! (कलमदान को फिर ट्रंक में रखकर बाहर निकालता है फिर उसे खोलता है) कलमदान में एक चेस्टर बुक? नमस्कार! बस! अब और आगे कुछ याद नहीं पड़ता। (बहू से) क्यों तुम्हें कुछ पता?

बहूजी—रामायण में तो नहीं था?

बाबूजी—ठीक! बहुत अच्छा निशाना लगाया? कहाँ है रामायण?

बहूजी—परसों पर मुकुन्द की मौसी ले गई थी अखण्ड पाठ के लिये। जाकर ले आती हूँ। (अपना दुपट्टा ओढ़कर पल्ला घुमाते हुए चली जाती है)।

मन्नू—पिताजी गीता में तो न था?

बाबूजी—कहाँ है गीता?

मन्नू—मुकुन्द के पिताजी ले गए हैं अखण्ड पाठ के लिये। मांग लाऊँ?

पात्र

कपिल बाबू

मालती

उसकी पत्नी

रम्मू

उनका छोटा लड़का

डॉक्टर साहब

पड़ोस के कुछ छोटे लड़के

स्थान—मालती के सोने का कमरा

काल—एक संध्या

रम्मू—मुझे आज भूख ही नहीं है।

मालती—सोने को तो जाएगा?

रम्मू—मुझे नींद भी नहीं आ रही है।

मालती—(तुरन्त उठकर दौड़ जाती है और उसका हाथ पकड़ लेती है)।

रम्मू—(चौंकते हुए बैठ जाता है)।

मालती—(उसका हाथ पकड़े हुए ही) बाईं एक बगल! (दूसरा हाथ डालकर बगल मापते हुए अचानक रुक जाती है और पकड़े हुए हाथ को टटोलती हुई) रम्मू तेरे हाथ गरम हैं! (उसके माथे पर हाथ रखती है) माथा भी तो। तुझे फिर बुखार आ गया! (उसे पलंग की तरफ ले जाती है)।

रम्मू—कैसी बातें कर रही हो? बुखार आया होता तो क्या मैं बाहर अपने साथियों के साथ फुटबॉल खेलता होता?

मालती—तू बच्चा है। बच्चे ऐसी ही लापरवाही कभी-कभी कर लेते हैं। माता पिता का कर्तव्य है सावधानी से उनकी देख-रेख करें।

रम्मू—मैं समझ गया। तुम मुझे खेलता देखना नहीं चाहती हो। इसी से मेरा बुखार बुला रही हो। अच्छा जाने भी दो मैं छोड़ता हूँ पैसे का लालच। नहीं चाहिए मुझे पैसा न हो मुझे पैसा। (हाथ छुड़ाकर भागने लगता है)।

मालती—(उसका हाथ नहीं छोड़ती)।

रम्मू—खेलने को तो जाने दो।

मालती—नहीं और तबीयत खराब हो जायगी (गोद में उठाकर रम्मू को बिस्तर पर सुला देती है) ज्यादा बातें न कर चुपचाप सो रह पिताजी के दफ्तर से लौटने तक। फिर पैसा कहीं नहीं जाता। (कंबल ओढ़ा देती है)।

रम्मू—(कंबल के भीतर से) जाने दो माँ मेरे साथी मेरी राह देख रहे होंगे।

मालती—कह तो दिया नहीं। (बैठकर फिर नब्ज़ देखने लगती है) पिताजी नाराज होंगे।

रम्मू—(कंबल से बाहर मुँह निकालकर) कौन कहता है मुझे बुखार है? (पलंग पर से नीचे भूमि पर कूद जाता है) बीमार नहीं हूँ मैं अब दौड़ सकता

है ? मैं बिलकुल ठीक हूँ। मैं जाऊँगा जरूर। (बाहर को जाने लगता है)।

मालती—(उठकर उसे पकड़ लेती है) ऐसा कहना न मामा तो ठीक न होगा। उनके घर आने पर मैं तुम्हें खूब मार खिलाऊँगी। (फिर उसे बिस्तर पर सुला देती है) अगर चुपचाप बिस्तर में सो रहेगा तो—

[बाहर रम्मू के साथी उसे पुकारते हैं—"रम्मू ! रम्मू !"]

रम्मू—(उठकर जाने लगता है) आया।

मालती—(फिर उसे रोक एक चवन्नी निकालकर देती है) ले यह चवन्नी है। अगर पिताजी के आने तक चुपचाप सो रहेगा तो तेरे लिए हॉकी-स्टिक मँगवा दूँगी।

रम्मू—जैसी रमेश के पास है ?

मालती—हाँ वैसी ही, उससे भी अच्छी।

रम्मू—और एक गेंद भी ?

मालती—हाँ वह भी।

[कई आवाजें खिड़की के पास से आती हैं—"रम्मू ! रम्मू !"]

रम्मू—(सिर उठाकर मालती की ओर देख अनुमति की भीख माँगते हुए) माँ !

मालती—हॉकी स्टिक नहीं चाहता ?

रम्मू—चाहता हूँ। तब कह दो उनसे रम्मू बीमार पड़ गया। (मुँह ढककर सो जाता है)।

मालती—(खिड़की के पास जा बाहर लड़कों से कहती है) क्या कहते हो रम्मू से ? वह आज बीमार है खलने नहीं आ सकता। (रम्मू के पास लौटती है)।

रम्मू—लेकिन माँ तुम झूठ-मूठ ही मुझे बीमार बना रही हो। यह भी क्या कोई अच्छी बात है ?

मालती—संसार में ऐसी कौन माता है जो अपने पुत्र को बीमार बना देना चाहती हो ?

रम्मू—लेकिन कैसे ? कैसे कहती हो तुम यह बुखार है ? क्या तुम

डॉक्टरनी हो ?

मालती—(मेज का ड्रावर खोल उसमें से थर्मामीटर निकालती है) लो यह थर्मामीटर मुँह में लगाओ यह करेगा फ़ैसला ।

रम्मू—(मुँह खोलकर थर्मामीटर लगाता है) ।

मालती—(मेज पर से घड़ी हाथ में उठा लेती है) ।

[रम्मू का एक साथी आता है]

साथी—रम्मू कहाँ है ?

मालती—वह तो लेटा उसका जी ठीक नहीं है । जाओ मत छेड़ो उसे ।

साथी—अभी-अभी तो वह बिलकुल ठीक था ।

रम्मू—(थर्मामीटर मुँह में लगाए उसे अपनी तरफ इशारे से बुलाता है) ।

साथी—(रम्मू की ओर बढ़ता है) ।

मालती—(उसे रोककर) नहीं उसके पास न जाओ । कल को ठीक हो जाने पर वह जरूर तुम्हारे साथ खेलेगा । (साथी का हाथ पकड़कर उसे द्वार से बाहर कर देती है । घड़ी मेज पर रख फिर रम्मू के मुँह से थर्मामीटर निकालकर देखती है और चौंक उठती है) है ! एक सौ चार डिग्री !

रम्मू—(बिस्तर पर उठकर) बुखार है ? कितना माँ ?

मालती—सुना नहीं तुमने ? एक सौ चार डिग्री ! कहा न था मैंने ? अब तो हुआ विश्वास ?

रम्मू—(बिस्तर में लेटकर मुँह ढक लेता है) ।

मालती—जाड़ा भी लग रहा है ?

रम्मू—ऐसा समझो ।

मालती—एक कम्बल और ले आती हूँ । (जाती है) ।

[कानाफूसी करते हुए रम्मू के चार साथी दबे पैर भीतर आते हैं]

पहला साथी—नहीं है कोई यहाँ ।

रम्मू—(बिस्तर छोड़कर उनके बीच में आ जाता है) ।

दूसरा साथी—बाप रे ।

रम्मू—माँ कहती है बुखार है। लेकिन मेरा मन खाने को चाह रहा है।

तीसरा साथी—तुम्हारी जगह में किशन को सुलाकर धोखा देंगे। उसके पैर में चोट लग गई वह नहीं चल सकता। आओ किशन।

किशन—(पलंग में चला जाता है)।

[किशन को पलंग में सुलाकर साथी जैसे ही उसे कम्बल ओढ़ाते हैं, भीतर से दूसरा कम्बल लेकर मालती आ जाती है।]

मालती—अच्छा ऽ ऽ ! (झपट कर रम्मू का हाथ पकड़ लेती है)।

[सब साथी हँसते हुए भाग जाते हैं]

रम्मू—उँ ! उँ ! माँ !

मालती—(रम्मू को फिर पलंग में सुलाकर) हठ नहीं करते बेटा माता पिता का कहना मानते हैं। बीमारी में परहेज से रहते हैं, जरा सी भूल से बढ़ जाती है। द्वार बन्द कर साँकल चढ़ा दूँ। तुम्हारे साथी ऐसे न मानेंगे। (द्वार बन्द कर साँकल चढ़ा देती है)।

रम्मू—होली खिलाने दोगी न ? (कम्बल के बाहर मुँह निकालता है)।

मालती—हाँ तो वह लिया।

रम्मू—तब बीमार होकर लेट रहने में कोई घाटा नहीं है ? खाने में परहेज कर लूँगा लेकिन खाने से नहीं।

मालती—अधिक बक-बक न करो कुछ देर आराम जरूरी है। (उसका मुँह ढक देती है और फिर चालू काढ़ने में लग जाती है)।

[पड़ोस में कहीं रेडियो बजता सुनाई देता है]

रम्मू—(धीरे से कम्बल के बाहर मुँह निकालकर फिर भीतर कर लेता है)।

मालती—(चालू-काढ़कर उठ खड़ी हो जाती है। घड़ी को देखती है) शाम का समय हो गया उनके आने का भी। (रम्मू की तरफ दृष्टि कर) एक ही बार किसी का बुखार और कोई प्रभाव ही नहीं ! आश्चर्य है ! बालक ही ठहरा। बुखार की भी ताकत खो जाती है।

[साबू की थाली लेकर भीतर जाने लगती है]

कपिल बाबू—(बाहर से द्वार खटखटाते हैं)।

मालती—(सांकल खोलती है)।

कपिल बाबू—(आकर) कौन आया है? रम्मू? क्या हो गया?

मालती—(उन्हें थर्मामीटर देती हुई) देखिए, इतना बुखार है।

कपिल बाबू—(थर्मामीटर में देखकर) एक सौ चार डिग्री! एकदम बहुत ज्यादा! जाकर डॉक्टर साहब को बुला लाता हूँ। फिर कहीं बाहर न निकल जायें। (जाता है)।

मालती—(साबू की थाली लेकर भीतर चली जाती है)।

[खिड़की की राह फुटबाल कमरे के भीतर आ जाती है]

रम्मू—(मुँह खोलकर देखता है)।

[रम्मू के चार साथी भीतर आ जाते हैं]

पहला साथी—कहाँ गई फुटबॉल?

रम्मू—वह देखो उस कोने में।

दूसरा साथी—(फुटबॉल उठाकर) फिर आ गए क्या?

रम्मू—हाँ बुखार आ गया।

तीसरा साथी—कौन कहता है?

रम्मू—थर्मामीटर।

पहला साथी—अपनी कहो।

रम्मू—मैं तो ठीक हूँ।

दूसरा साथी—फिर भी क्यों गए?

रम्मू—हॉकी स्टिक की आशा में।

तीसरा साथी—(भीतर से मालती की आहट पाकर) चलो वे आ गईं।

पहला साथी—(बाहर से कपिल बाबू को आता देखकर) उधर से बाबूजी आ रहे हैं।

दूसरा साथी—चलो सब पलंग के नीचे छिप जायें।

[सब पलंग के नीचे छिपते हैं। बाहर से डॉक्टर के साथ कपिल बाबू

जाते हैं, भीतर से मालती।]

डॉक्टर—(रम्मू के पास जाकर) क्यों रम्मू ? क्या हो गया ?

रम्मू—माता जी से पूछिए।

मालती—(धीमे स्वर में) यह थर्मामीटर दिखा दीजिए। (कपिल बाबू को थर्मामीटर देती है)।

डॉक्टर—(रम्मू की नाड़ी और माथे पर हाथ रखकर) जबान दिखाओ।

रम्मू—(जबान दिखाकर) भूख लगी है डॉक्टर साहब बड़ी जोर की।

डॉक्टर—(नाक के स्वर में) हूँ ऽऽ।

कपिल बाबू—यह टेंपरेचर अभी लिया था। (डॉक्टर को थर्मामीटर देता है)।

डॉक्टर—(थर्मामीटर में पढ़कर) एक सौ चार डिग्री ! बहुत है ! (फिर रम्मू के हाथ की नाड़ी और माथे पर हाथ रखता है) ह-ह-ह-ह ! (जोर से हँसता है)।

कपिल बाबू—क्या बात है डॉक्टर साहब ?

डॉक्टर—(थर्मामीटर झटकाते हुए फिर हँसते हैं) ह-ह-ह ! थर्मामीटर लगाने से पहले झटका दिया था क्या ?

कपिल बाबू—(मालती की तरफ दृष्टि कर) क्यों ?

मालती—ठीक याद नहीं। शायद झटका दिया था।

डॉक्टर—नहीं झटकाया। (रम्मू से) लो दो आधा मिनट। (रम्मू के मुँह में थर्मामीटर देकर हाथ की घड़ी में देखते हैं)।

कपिल बाबू—मैं भी असमंजस में पड़ गया था। (डॉक्टर से छिपाकर पत्नी को दो अँगुलियाँ दिखाते हैं)।

मालती—(भीतर जाती है)।

कपिल बाबू—कभी-कभी बड़ा धोखा हो जाता है।

डॉक्टर—हाँ ऽऽ।

कपिल बाबू—बिना बात आपको कष्ट दिया।

मालती—(आकर कपिल बाबू को दो रुपए देती है)।

डॉक्टर—(थर्मामीटर निकालकर देखते हैं) नहीं बुखार नहीं है। थर्मामीटर में किसी का पहला टेंपरेचर होगा।

रम्मू—(पलंग से नीचे कूदकर) खेलने को जाऊँ?

डॉक्टर—अवश्य।

रम्मू—(मालती से) हॉकी स्टिक मँगा दोगी न?

मालती—(चुप रहती है)।

कपिल बाबू—(डॉक्टर को रुपए देते हुए) लीजिए।

डॉक्टर—क्या है यह?

कपिल बाबू—आपकी फीस।

डॉक्टर—लेकिन इलाज किसका किया?

रम्मू—माता जी की बुद्धि का।

[रम्मू के सब साथी हँसते हुए पलंग के नीचे से निकलते हैं]

सब साथी—चलो रम्मू! फुटबॉल की मैच खेलने।

डॉक्टर—तुम्हारा कैप्टन कौन है?

पहला साथी—(फुटबॉल बगल में दबाए) मैं हूँ।

डॉक्टर—(कपिल बाबू से रुपए लेकर पहले साथी को देते हुए) लो रिफ्रेशमेंट के लिये।

सब साथी—धन्यवाद! (ताली बजाकर) जय! डॉक्टर साहब की जय!

[रम्मू सहित सब लड़के ताली पीटते हुए जाते हैं। डॉक्टर साहब कपिल बाबू को थर्मामीटर लौटाते हैं।]

कपिल बाबू—(थर्मामीटर मालती को देते हैं) अब तो देख लिया मरना पारे की रेखा यहीं पर है।

[मालती नीची दृष्टि कर मुसकाती है]

डॉक्टर—अच्छा (हाथ जोड़ता है)।

कपिल बाबू—चाय तो पी जाइए।

मालती—तैयार है। (भीतर जाती है)।

[दोनों कुर्सियों में बैठते हैं। भीतर चाय के प्याले खनकते हैं]

[परदा गिरता है]

पात्र

मास्टर जी

उनकी धर्मपत्नी

एक देहाती स्कूल के हेडमास्टर

स्थान—गाँव में मास्टर जी के अध्ययन का कमरा

काल—दिन में १०० और ११० के बीच में

फलस्वरूप हमारे शरीर और मन के बीच में अलगाव हो गई है—हमें सुख का भेद नहीं मिलता।

स्त्री—तो क्या करने को कहते हो ?

मास्टरजी—भीतर के काम-काज रेडियो-किताबों से मन उचट जाने पर फूलों के गमलों और क्यारियों में चली जाओ। सींचो पौधो काट-छाट सजाकर माथ के सामने लाकर रख दो।

स्त्री—मैं कहती हूँ यह जो इतना रुपया इतनी धरती और इतना समय तुम फूलों में खर्च कर रहे हो यह भी सब तरकारियों में ही व्यय होता तो—

मास्टरजी—या तुम्हारे उस नए बैंकबैलेंस के ही फंड में जमा कर दिया जाता क्यों ? सिर्फ जानवरों की तरह पेट भरने के लिये ही हम नहीं हैं। तरकारी खाई जाती है तो क्या फूल हमारी आँखों में एक सपने का संसार नहीं बसाते ? पेट की भूख से मन के भोजन का मूल्य अधिक है। रुपया ही अगर तुम्हारा भगवान है तो भी क्या हम फूलों की बिक्री से उसे नहीं कमा सकते ? कहाँ बात को बीच में लाते हो ?

स्त्री—तुम तो न-जाने कहाँ-से-कहाँ बात को बीच में लाते हो ? नहीं करती मैं तुम्हारे फूल-पत्तों के बीच में परिश्रम ?

मास्टरजी—यह तुमने खूब कही ! किसी तरह घास की जुड़ी काटने को तुम्हें राजी किया तो तुमने अपनी अँगुली छीलकर रख दी। बगीचे में पहुँची तो मार्ईस्पर के छोटे-छोटे पेड़ों की कलियाँ समझकर तोड़ लाईं। टमाटर तोड़ने खेत में पहुँचीं तो सोने का लॉकेट गँवाकर लौटीं।

स्त्री—(नाराज होकर जाने लगती है)।

मास्टरजी—(पत्नी का हाथ पकड़ लेते हैं) हैं, तुम तो नाराज होकर जाने लगीं। बैठो तुम्हारी कसम ! अब एक अक्षर भी तुम्हारे विरुद्ध न बोलूँगा। असल बात यह है जब तक हम अपनी कमजोरी को कमजोरी न समझेंगे तब तक हम बलवान हो नहीं सकते।

स्त्री—क्या किसी की दुर्बलता का इस तरह विज्ञापन करना ठीक है ? आप खेतों पर काम करते हैं तो क्या मैं रसोईघर में नहीं रहती ? अनाज और उसे पकाना क्या कोई गल्ला पैदा करना ही क्या बहुत बड़ा काम है ?

चाहूँ कि मन पड़ा और हुआ तैयार ! मैं कहती हूँ उसमें तो और भी ज्यादा सावधानी और मेहनत चाहिए। क्या बुरा था शहर में ? कई अच्छे घरों में ट्यूशन करते थे। गुजर के लिए भगवान काफी देते ही थे। लगन सवार हुई और छोड़ दिया वह सब। पिताजी ने कितना समझाया एक नहीं मानी। बड़े नाम की तरफ—चाले चले। अब हल पर हाथ रखकर तुम भूमि की ओर देखते हो तो मैं समझती हूँ तुम्हारी बुद्धि खो गई और तुम उसी को ढूँढ़ रहे हो।

मास्टरजी—निरी पागल हो तुम ! मन और शरीर के श्रम का सामंजस्य होना जरूरी है। पुस्तक और लेख लिखते लिखते जब मैं थक जाता हूँ तो उस थकान को खेतों पर शारीरिक श्रम में भुला देता हूँ और हाथ-पैरों के थक जाने पर मैं फिर दिमागी काम की शरण में चला जाता हूँ।

स्त्री—मैं फिर कहूँगी जब आदमी हाथ-पैरों से काम-चोरी करने लगता है तो वह शहर की तरफ पैर बढ़ाता है और जब मस्तिष्क का काम नहीं हो सकता उससे तभी गाँव में आकर सिर छिपाता है।

मास्टरजी—(हँसते हैं) ह—ह—ह !

[कोई बाहर से द्वार खटखटाता है]

स्त्री—हेडमास्टर साहब होंगे।

मास्टरजी—हाँ द्वार खोल दो।

स्त्री—(द्वार खोल देती है)।

हेडमास्टर—(आकर) अभी खाना नहीं खाया है मैंने सुबह से।

मास्टरजी—क्यों-क्यों ऐसी भूख-हड़ताल की क्या जरूरत है ?

हेडमास्टर—वक्त ही कहाँ है ? फूल-पत्तियों से दीवारें और फाटक सजाए। दरी—मेज—कुर्सियों का इन्तजाम किया। लड़कों के लिए और मौलवी की अर्धांगी सजाई। एक बजकर पन्द्रह मिनट हो गए। पाँच मिनट में नहा-धोकर चला हूँ इसी रास्ते। आप दोनों तैयार रहें। मैंने पूरी कोशिश की है आपके सभापतित्व में हमारा वार्षिकोत्सव हर दृष्टि से सफल रहे, श्रीमतीजी बच्चों को इनाम बाँटकर हमें कृतार्थ करेंगी।

फलस्वरूप हमारे शरीर और मन के बीच में अलगाव हो गई है—हमें सुख का चैन नहीं मिलता।

स्त्री—तो क्या करने को कहते हो ?

मास्टरजी—भीतर के काम-काज रेडियो-सिनेमाओं से मन उचट जाने पर फूलों के गमलों और क्यारियों में चली जाओ। सीखो पौधों पास-पास उगाकर माथ के सामने लाकर रख दो।

स्त्री—मैं कहती हूँ यह जो इतना रुपया इतनी मरती और इतना समय आप फूलों में खर्च कर रहे हैं वह भी सब तरकारियों में ही व्यय होता तो—

मास्टरजी—या तुम्हारे सब नए बैंकबैलेंस के ही फंड में जमा कर लिया ता क्यों ? सिर्फ जानवरों की तरह पेट भरने के लिये ही हम नहीं हैं। रकारी खाई जाती है तो क्या फूल हमारी आँखों में एक सपने का संसार नहीं गाते ? पेट की भूख से मन के भोजन का मूल्य अधिक है। रुपया ही अगर तुम्हारा भगवान है तो भी क्या हम फूलों की बिक्री से उसे नहीं कमा सकते ?

स्त्री—तुम तो न-जाने कहाँ-से-कहाँ बात को खींच ले जाते हो ? कहाँ नहीं करती मैं तुम्हारे फूल-पत्तों के बीच में परिश्रम ?

मास्टरजी—वाह तुमने खूब कही। किसी तरह घास की छुट्टी काटने को तुम्हें राजी किया तो तुमने अपनी अंगुली छीलकर रख दी। बगीचे में पहुँची तो कार्नेशन के छोटे-छोटे पौधों को घासियाँ समझकर तोड़ डाले। टमाटर तोड़ने खेत में पहुँची तो बोने का लक्ष्य गँवाकर लौटी।

स्त्री—(नाराज होकर जाने लगती है)।

मास्टरजी—(पत्नी का हाथ पकड़ लेते हैं) हैं तुम तो नाराज होकर जाने लगीं। बैठो तुम्हारी कसम। अब एक शब्द भी तुम्हारे विरुद्ध न बोलूँगा। असल बात यह है, जब तक हम अपनी कमजोरी को कमजोरी न समझेंगे तब तक हम बलवान हो नहीं सकते।

स्त्री—क्या किसी की दुर्बलता का इस तरह विज्ञापन करना ठीक है ? आप खेतों पर काम करते हैं तो क्या मैं रसोईघर में नहीं रहती ? अनाज और तरकारियाँ पैदा करना ही क्या बहुत बड़ा काम है ? उसे पकाना क्या और

समझो। मेरे सामने अँधेरा छा रहा है। मैं गिरा। (धड़ाम से गिर पड़ता है)।

[हेडमास्टरजी आते हैं]

हेडमास्टर—क्या हुआ? क्या हुआ?

स्त्री—कहते हैं साँप ने डस लिया। हेडमास्टरजी जल्दी कुछ मदद कीजिए।

हेडमास्टरजी—घबराइए नहीं। एक डॉक्टर और एक झाड़ने वाले को लेकर मैं अभी आता हूँ। (दौड़ते हुए चला जाता है)।

स्त्री—(मास्टरजी की नाड़ी पर हाथ रखती है)।

[परदा गिरता है]

मथुरा—तो चलो न उधर ही। क्या अन्तर पड़ जायगा ?

सुन्दर—बात ऐसी है, वे अपने तूफानी दौरे में हैं। सिर्फ इसी महीने में सारे प्रान्त के झील-तालाबों की सैर करनी है उन्हें। मचानों पर बहुत सम्भव है चार घण्टों में भी एक मछली न फँसेगी। यहाँ पर तालाब मछलियाँ बहुत चालाक हैं। थोड़ी ही देर में ये तीनों झोले भर जायेंगे। भाई, तभी तो तुम्हारी खुशामद कर लाया हूँ यहाँ।

[तीनों झील के किनारे बैठते हैं]

मथुरा—कहो रत्नी साहब क्या तीनों झोले रख जायेंगे अकेले ?

सुन्दर—समझते क्या हो उनको मोटाई पंप से भरी है ? घबराओ नहीं वे ओवरकोट का कुछ नहीं करते। सिर्फ उन्हें दिखानी हैं खिलानी नहीं।

मथुरा—और जो कहीं पुजारी जी ने पकड़ लिया तो तुम आज जरूर हमें अपनी हालत दिखवा देने वाले हो।

सुन्दर—जो परेड मैंने तुम्हें दिखाई है उसी से पुजारी जी पर मन्तर चलाएँगे।

त्रिलोक—(थैले में हाथ देकर) ये इतने बिस्कुट क्यों लाए हो ?

सुन्दर—अभी रखो इन्हें इनसे न्योता दिया जायगा मछलियों को।

मथुरा—(अपने थैले में हाथ देकर) और इस गुंधे हुए आटे का क्या करोगे ?

सुन्दर—यह झील में खिलाया जायगा।

[मन्दिर में फिर घंटा बजता है]

त्रिलोक—और तुम अपने थैले में क्या लाए हो ?

सुन्दर—खाना कुछ नहीं सब ले जाने के लिए है। सोच रहा हूँ, अगर कोई तीन फुट की मछली फँस गई, तो उसे कैसे ले जायेंगे ?

मथुरा—एक-एक फुट के तीन टुकड़े कर तीनों थैलों में भर ले चलेंगे।

सुन्दर—हाँ ठीक ऐसे ही जैसे यह बंसी के टुकड़े यहाँ लाए हैं। लाओ थाम अपने बंसी।

पुजारी—(मन्दिर से पुकारता है) कौन है रे ? यहाँ क्या कर रहे हो ?

तुम्हारी मछली—

सुन्दर—(अचानक बंसी सँभालते हुए) हाँ हाँ फँसी-फँसी ! लेकिन बड़ा ज़ोर लग रहा है। जान पड़ता है तीस पौंड से भी भारी है माहसीर !

मथुरा—(आवाज़) खींच लो ! खींच लो !

सुन्दर—क्या बताया ? वह खींच नहीं रही है भाई !

मथुरा—(आवाज़) तुम क्यों नहीं खींचते फिर ?

सुन्दर—(ज़ोर लगाता हुआ) खिंच नहीं रही है। काँटा कहीं किनारे में तो नहीं फँस गया ?

मथुरा—(आवाज़) मैं आऊँ क्या ज़ोर लगाने के लिए ?

सुन्दर—नहीं तुम वहीं चिपके रहो। (फिर ज़ोर लगाकर) कोई नई जात की मछली तो नहीं पैदा हो गई ?

[अचानक मन्दिर में ज़ोर का शंख बजता है]

मथुरा—(आवाज़) हैं ! यह तो पूजा ख़तम हो गई !

सुन्दर—एक रुपए में इतनी छोटी पूजा ? (जेब में हाथ डालकर) लो एक रुपया और ले जाकर दे आओ उसे।

मथुरा—(आवाज़) कैसे ? अरे ! अरे ! पुजारी जी उसका घूँघट खिसकाकर उसके माथे पर प्रसाद की रोली लगाने के फेर में पड़े हैं।

सुन्दर—आओ मथुरा ज़ोर लगाओ शायद एक ही मछली से काम बन जाय।

[मथुरा आता है। दोनों धीरे-धीरे बंसी खींचते हैं। काँटे में लगा हुआ एक पुराना बूट बाहर निकलता है।]

मथुरा—यह तो पुरानी पलटन का बूट है।

सुन्दर—हे भगवान् ! (माथे पर हाथ मारता है) तीस पौंड की माहसीर !

मथुरा—किस्सा ख़तम हुआ। अब पुजारी को इधर देखने की फ़ुरसत हो गई।

सुन्दर—(ग़ुस्से से बंसी के तीन टुकड़े कर उसकी गठरी बाँध देता है)।

चितोट—(ताड़ी खोल हँसता हुआ आता है) क्यों कितनी मछलियाँ मारीं ? (ताड़ी आदि थैले में छिपा देता है)।

मथुरा—(उसे खूब डराकर चिढ़ाता है)

विनोद—कोई फिकर नहीं ! अभी मुझे चपरासी मिला । वह कहता था—दफ्तर में चटोरजी साहब का तार आया है आज उनका यहाँ आने का प्रोग्राम कैंसिल हो गया ।

पुजारी—(आवाज) अभी एक औरत पूजा करने आई थी । वह यहाँ अपना सिगरेट का डिब्बा भूल गई । बड़ी वाहियात बात ! इसी तरफ को गई थी । कहाँ है ?

सुन्दर—हम क्या जानें ?

पुजारी—(आवाज) और तुम अभी तक यहीं बने क्या कर रहे हो ?

सुन्दर—यही अपनी पुरानी प्रैक्टिस ! अटेंशन ! (सब खड़े हो जाते हैं) राइट टर्न ! मार्च ! लैफ्ट-राइट, लैफ्ट राइट, राइट, राइट ।

[सब डंडे कंधों पर रख वैसे उठा कदम मिला चले जाते हैं]

[परदा गिरता है]

तुम्हारी मछली—

सुन्दर—(अचानक बंसी सँभालते हुए) हाँ हाँ धीमी-धीमी! लेकिन बड़ा ज़ोर लग रहा है। मालूम पड़ता है तीस पौंड से भी भारी है माहसीर!

मथुरा—(आवाज़) ढील दो! ढील दो!

सुन्दर—क्या फ़ायदा? यह खींच नहीं रही है भाई!

मथुरा—(आवाज़) तुम क्यों नहीं खींचते फिर?

सुन्दर—(ज़ोर लगाता हुआ) खिंच नहीं रही है। काँटा कहीं किनारे में तो नहीं फँस गया?

मथुरा—(आवाज़) मैं आऊँ क्या ज़ोर लगाने के लिए?

सुन्दर—नहीं तुम वहीं चिपके रहो। (फिर ज़ोर लगाकर) कोई नई जात की मछली तो नहीं पैदा हो गई?

[अचानक मन्दिर में ज़ोर का शंख बजता है]

मथुरा—(आवाज़) हैं! यह तो पूजा ख़तम हो गई!

सुन्दर—एक रुपए में इतनी छोटी पूजा? (जेब में हाथ डालकर) लो एक रुपया और ले जाकर दे आओ उसे।

मथुरा—(आवाज़) कैसे? अरे! अरे! पुजारी जी उसका पूँछ छिपकाकर उसके माथे पर प्रहार की रीती लगाने के फेर में पड़े हैं।

सुन्दर—आओ मथुरा ज़ोर लगाओ, शायद एक ही मछली है काम बन जाय।

[मथुरा आता है। दोनों धीरे-धीरे बंसी खींचते हैं। काँटे में लगा हुआ एक पुराना बूट बाहर निकलता है।]

मथुरा—यह तो पुरानी पलटन का बूट है।

सुन्दर—हे भगवान्! (माथे पर हाथ मारता है) तीस पौंड की माहसीर!

मथुरा—त्रिलोक गया। अब पुजारी को इधर देखने की फ़ुरसत हो गई।

सुन्दर—(घुटने से बंसी के तीन टुकड़े कर अपनी फरसी खोल देता है)।

त्रिलोक—(दाढ़ी खोल हँसता हुआ आता है) क्यों कितनी माहसीरें मारीं? (दाढ़ी आदि बगल में छिपा लेता है)।

मथुरा—(उसे बूट उठाकर दिखाता है)

त्रिलोक—कोई फ़िक्र नहीं ! अभी मुझे चपरासी मिला। वह कहता था—दफ़्तर में चटर्जी साहब का तार आया है, आज उनका यहाँ आने का प्रोग्राम कैंसिल हो गया।

पुजारी—(आवाज़) अभी एक औरत पूजा करने आई थी। वह यहीं अपना सिगरेट का डिब्बा भूल गई। बड़ी वाहियात बात ! इसी तरफ़ को गई थी। कहाँ है ?

सुन्दर—हम क्या जानें ?

पुजारी—(आवाज़) और तुम अभी तक यहीं खड़े क्या कर रहे हो ?

सुन्दर—वही अपनी पुरानी प्रैक्टिस ! अटेंशन ! (सब खड़े हो जाते हैं) राइट टर्न ! मार्च ! लेफ़्ट-राइट, लेफ़्ट राइट, राइट, राइट ।

[सब डंडे कंधों पर रख धीरे धीरे, कदम मिला चले जाते हैं]

[परदा गिरता है]